श्रीदश लक्षण धर्म संग्रह ।



मिलनेका पता—

पी. एम. एल. जैन मेनेजर जैनपुस्तकालय,

जि. वर्धा सी. पी.

समव शरण दर्पण ।

इस पुस्तकमें श्रीसूरि श्रीजिनचन्द्रांते वासिना पंडित मेधाविना विरचित संस्कृतके ८० छन्दोंमें भाषा टीका सहित श्रीअर्हन्त परमात्माकी अनन्त चतुष्टयादि अन्तरंग लक्ष्मी तथा बाह्य समव शरण नामक सभाका वर्णन अति सरलताके साथ किया गया है जिसको पढनेसे परमात्माके स्वरूप कामले प्रकार अनुभव होकर जिनपूजन, जाप्य, सामायिकादि कार्योंमें चित लवलीन होकर अपूर्व आनंद उत्पन्न होनेके साथ २ महान पुण्य बंध होता है प्रारंभ में समव शरणका स्वरुप समझनेके लिये बहोत बडी प्रस्तावना लिखी गई है पुस्तक सफेद, मोटे, चिकने कागजपर सुंदर और मोटे टाइपमें जगत्प्रसिद्ध निर्णय सागर प्रेसमें प्रकाशित कराई है । मूल्य सिर्फ चार आने डा. म. ⌐)॥ डेढ आना ।

श्रीजिनेन्द्र दर्शन पाठ ।

अर्थ व विधि सहित इसमें श्रीजिनमंदिरमें प्रवेश करनेकी विधि, काशी निवासी पं. विन्द्रावनजी रचित अर्हन्त स्तोत्र, संस्कृत दर्शन पाठ, पं. दौलतरामजी कृत भाषा दर्शन स्तोत्र, तथा कोन २ द्रव्यले कर दर्शन करना प्रत्येक द्रव्यका श्लोक मन्त्र विधान, प्राकृत भाषामें पञ्चपरमेष्ठी स्तोत्र, जिनवाणीकी स्तुतिव प्रार्थना रात्रिको दीप धूपसे आरती करनेके लिये आरती पाठ व जिन देवसे अन्त प्रार्थना आदि विषय संग्रह किये गये हैं प्रत्येक संस्कृत प्राकृत स्तोत्र व फुटकर श्लोक मन्त्रोंका भाषा अर्थ बडी सरलतके साथ लिखा गया है पुस्तक सफेद मोटे चिकने कागजपर सुंदर और मोटे अक्षरोंमें निर्णय सागर प्रेसमें प्रकाशित कराई है इतनी उत्तम पुस्तक होनेपर भी सर्व साधारणके सुभीते के लिये मूल्य सिर्फ ढाई आने रक्खा है । डा. म. अलहिदा ।

(इकट्ठी लेनेवालोंको किफायत) एकही किस्मकी एक साथ पुस्तकें लेनेसे ५ के मूल्यमें ६ दशके १० के मूल्यमें १३।१५ के मूल्य मे २० और २० के मूल्यमें २५ तथा ५० के मूल्यमें १०० प्रतियां भेजी जावेंगी ।

पता—

पी एम. एल. जैन मेनेजर जैन धर्म पुस्तकालय

जि. वर्धा सी. पी

॥ श्रीपरमात्मनेनमः ॥

(अथ । श्रीमद्रयधु कविविरचिता अर्थ सहित)

दशलाक्षणिक जयमाला

अथ प्रथम उत्तम क्षमा धर्म वर्णन ।

उत्तम खम मद्दउ अज्जव सच्चउ पुण सउच संजम सुतओ ।
चाउ वि आकिंचण भवभय वंचण बंभ चेरु धम्मजु अखओ ॥ २ ॥

अर्थात्—(उत्तम खम मद्दउ अज्जव सच्चउ) उत्तम क्षमा, उत्तममार्दव, उत्तमआर्जव, उत्तमसत्य (पुण सउच संजम सुतओ चाउ) और उत्तमसौच, उत्तमसंयम, उत्तमतप, उत्तमत्याग, (विआकिंचण बंभचेरु धम्मजु अखओ) उत्तम आकिञ्चन्य उत्तम ब्रह्मचर्य्य ये (दश) आत्माके अक्षय धर्म हैं ॥ २ ॥

येनकेनाऽपि दुष्टेन पीडितेनाऽपि कुत्राचित्
क्षमा त्याज्या न भव्येन स्वर्ग मोक्षाभिलाषिणा ॥ २ ॥

अर्थात्—(कुत्रचित् येनकेन अपि दुष्टेन पीडितेनअपि) कहींपर जिस किसी दुष्ट के द्वारा पीडा होनेपरभी (स्वर्गमोक्षाऽभिलाषिणा भव्येन) स्वर्ग और मोक्षके अभिलाषी भव्यजीवको (क्षमानत्याज्या) क्षमाका त्याग कभी नहीं करना चाहिये ॥ १ ॥

भावार्थ किसी दुष्ट पुरुषके अपशब्द कहने मारनेपीटने शरीर का घात करने परभी जो क्रोध नहीं करना, क्योंकि फल जानकर

उसको समता भाव पूर्वक (हर्ष विषादरहित) सहना सो उत्तम क्षमा नामजीवका पहला स्वभाव (धर्म) है ॥ १ ॥ मानकषाय (अहंकार) को छोडकर नम्रीभूत परिणाम होना सो उत्तम मार्दव नाम जीव का स्वभाव (धर्म) है ॥ २ ॥ मायाचारी के परिणामों को दूरकरते हुवे जो सरल परिणामोंका होना वही उत्तम आर्जव नाम जीवका तीसरा स्वभाव (धर्म) है ॥ ३ ॥ सत्यवचन बोलना सो उत्तम सत्यनाम जीवका चौथा स्वभाव (धर्म) है ॥ ४ ॥ लोभका छोडना ही उत्तम शौचनाम जीवका पांचवा स्वभाव (धर्म) है तथा व्यवहार में स्नान आदि करनेको भी शौच कहा है ॥ ५ ॥ छः कायके जीवोंकी रक्षा करना तथा पांच इन्द्रियों को विषयोंमें प्रवृत होनेसे रोकना सो उत्तम संयम नाम जीवका छटास्वभाव (धर्म) है ॥ ६ ॥ कायोत्सर्गादिक (शरीरसे ममत्वछोड शुद्धात्मतत्वका विचार करना सो उत्तम तप नाम जीवका सातवां स्वभाव (धर्म) है ॥ ७ ॥ आहार, औषध, अभय, ज्ञान इसप्रकार चार प्रकार के दान उत्तम भावोंके साथ करना उत्तम त्याग नाम जीवका आठवां स्वभाव (धर्म) है ॥ ८ ॥ बाह्य दशप्रकारके और अन्तरंग चौदह प्रकार के परिग्रहोंका त्याग करना सो उत्तम आकिंचन्य नाम जीव का नौवां स्वभाव (धर्म) है ॥ ९ ॥ काम सेवनका त्याग अथवा जीव के स्वरूप चिन्तवनमें लीन होजाना सो उत्तम ब्रह्मचर्य नाम नाम जीवका दशवां स्वभाव (धर्म) है इन सब में उत्तम विशेषण सम्यक्त सहित (जैनधर्म का पूर्ण श्रद्धान) होने के लिये दिया है ।

अथ प्रथम उत्तमक्षमा धर्म वर्णन।

उत्तम खमतिहुलोयपसारी। उत्तम खम जम्मो दहितारी॥
उत्तम खम रयणत्तय धारी। उत्तम खम दुग्गइ दुह हारी॥ ३॥

अर्थात्—(उत्तम खमतिहु लोय पसारी) तीनोंलोकोंमें उत्तम क्षमाही सब धर्मोंमें सार है। (उत्तम खम जम्मो दहितारी) उत्तम क्षमा जन्ममरणरूपी समुद्रसे पार करदेने वाली है (उत्तम खम रयणत्तयधारी) उत्तमक्षमा सम्यग्दर्शन सम्यग्ज्ञान सम्यक् चारित्र इन तीनोंरत्नोंके धारण करनेवाली है अर्थात् जहां उत्तम क्षमा होती है वहांरत्नत्रय होते ही हैं (उत्तम खम दुग्गइ दुहहारी) उत्तम क्षमा नरकादि दुर्गतिके समस्त दुःखोंको हरण करनेवाली है॥ ३॥

उत्तम खम गुणगणसहयारी। उत्तमखम मुणिविन्दपयारी॥
उत्तम खम बुहयणचिन्तामणि। उत्तम खम संपज्जइ थिरमणि॥४॥

अर्थात्—(उत्तम खम गुणगणसहयारी) उत्तम क्षमा गुण समूहोंके साथ रहनेवाली है अर्थात् उत्तमक्षमाके होनेसे अनेक गुण प्रगट होजाते है (उत्तम खम मुणिविंदपयारी) यह उत्तमक्षमा मुनियोंको बड़ी प्यारी है श्रेष्ठमुनिजन इसका पालन करते हैं (उत्तमखम बुहयण चिन्तामणि) यह उत्तमक्षमा विद्वानोंके लिये चिन्तामणि है अर्थात् चिन्तामणिरत्नके समान इच्छितपदार्थोंके देनेवाली है। इसीतरह विद्वज्जनोंको उत्तमक्षमासे इच्छित ज्ञानादिक प्राप्त होते हैं (उत्तम खमसंपज्जइथिरमणि) परंयह उत्तमक्षमाचित्तकी एकाग्रता होनेसे उत्पन्न होती है॥ ४॥

उत्तमखम महिणिज्जसयलजणि। उत्तमखम मिच्छत तमोमणि॥
जंह असमत्थह दोप खमिज्जइ। जहिं असमत्थह णउखमिज्जइ॥५॥

जहिं आक्रोसण वयण सहिज्जइ। जहिं परदोसण जणि भासिज्जइ॥
जहिं चेयणगुण चित्तधरिज्जइ । तहिंउत्तम खम जिण भासिज्जइ॥६॥

अर्थात्--(उत्तमखम महिणिज्ज सयलजणि) यह उत्तम क्षमा समस्त लोकमें पूजित है (उत्तम खममिच्छत तमोमणि) और मिथ्यात्वरूपी अन्धकारके दूर करने के लिये मणिके समान है। जैसे प्रकाशमान मणिसे अन्धकार दूर होजाता है, उसीतरह उत्तमक्षमासे मिथ्यात्व दूर होकर सम्यक्त्व प्रगट होता है। (जहअसमत्थह दोष खमिज्जइ) जहां असमर्थ जीवोंके दोषक्षमा किये जाते हैं (जह असमत्थह णउरूसिज्जइ) जहां असमर्थोंके ऊपर क्रोध नहीं किया जाता, (जहिं आक्रोसण वयण सहिज्जइ) जहां आक्रोश वचनोंका (गालीगलौज आदिका) सहन किया जाता है, (जहिंपरदोस णजणिभासिज्जइ) जहां दूसरे के दोष प्रगट नहीं किये जाते (जहिं-चेयण गुणचित्त धरिज्जइ) जहां चित्तमें आत्माका चैतन्यगुण धारण किया जाता है (तहिं उत्तम खमजिण भासिज्जइ) वहां ही उत्तम क्षमा होती है ऐसा श्रीजिनेन्द्र देवने कहा है ॥ ५ ॥ ६ ॥

घत्ता—इयउत्तम खमजुय णरसुरखगणुय केवलणाण लहेविथिरु
हुइ सिद्धणिरंजण भवदुह भंजण अगणिय रिसिपुंगमजि चिरु॥ ७॥

अर्थात्—जिसका निरूपण ऊपर कर चुके हैं (इय उत्तम खमजुय) ऐसी उत्तम क्षमाके धारण करनेवाले पुरुषको (णर सुरखगणुय केवलणाण लहेवि थिरु भवदुह भंजण अगणिय रिसि-पुंगमजी चिरु सिद्ध णिरंजन हुइ) मनुष्य देव विद्याधर सभी नमस्कार करते हैं और वह अचल केवल ज्ञानको पाकर अनेक रिषियोंमें श्रेष्ठ, संसारके दुखोंसे रहित होता हुवा निरंजन सिद्ध होता है और वहांके अनंत सुख अनंत काल तक भोगता रहता है इसलिये सबको उत्तम क्षमा धारण करणा चाहिये ॥ ७ ॥ यहां विशेष इतना है क्रोध वैरीका जीतना है सोही उत्तम क्षमा है

ऐसा है क्रोध वैरी इस जीवके निवास करनेके स्थान जो [illegible] सन्तोषभाव, निराकुलताभाव, ताकों दग्ध करनेकों अग्नि समान है अर्थात् सम्यग्दर्शनादिरूप रत्ननका भंडारको दग्ध करे है, यशकों नष्ट करे है अपयशरूप कालिमाको चढावे है, धर्म अधर्मका विचार नष्ट होजाय है क्रोधीके अपना मन वचनकाय आपके वश नहीं रहे है। बहुत कालकी प्रीतिको क्षणमात्रमें बिगाड महान वैर उत्पन्न करे है क्रोध रूप राक्षसके वश होय सो असत्य वचन लोक निन्द्य भील चांडालादिकनके बोलने योग्य वचन बोले है। क्रोधी समस्त धर्म लोपे है क्रोधी होय तब पिताने मारडाले है, माताकों पुत्रकों स्त्रीकों बालककों स्वामीकों सेवककों मित्रको मार प्राण रहित करे है। अरतीव्र क्रोधी आपका हू विषतें शस्त्रतें मरण करे है, ऊंचे मकान तथा पर्वतादिकनतें पतन करे है कुएमें गिर पडे है क्रोधीकी कोऊ प्रकार प्रतीति नहीं जाननी। क्रोधी है सो यम राज तुल्य है, क्रोधी होय सो,प्रथमतो अपना ज्ञान दर्शन क्षमादिक गुणनको घाते है पीछे कर्मके वशतें अन्यका घात होय वा नहीं होय क्रोधके प्रभावतें महातपस्वी दिगम्बर मुनिहू धर्म ते भ्रष्ट होय नरक गये हैं। यो क्रोध है सो दोऊ लोकका नाश करे है, महा पाप बंध कराय नरक पहुचावे है बुद्धि भ्रष्ट करे है निर्दयी करदेय है, अन्यकृत उपकारको भुलाय कृतघ्नी करे है ताते क्रोध समान पाप नहीं इस लोकमें क्रोधादिक पापसमान अपना घात करनेवाला अन्य नहीं है। जो लोकमें पुन्यवान है महा भाग्य है जिनका दोऊ लोक सुधरना है तिनहीके क्षमानामा गुण प्रगट होय है क्षमा जो पृथ्वी ताकी ज्यों सहनेका स्वभाव होय सो क्षमा है अर सम्यक स्वपरको हित अहितको समझि करि जो अंतसमर्थन करि किया है उपद्रवनको आप समर्थ होय करके राग द्वेष रहित हुवा सहे है विकारी नहीं होय है ताकों उत्तम क्षमा कहिये है। यहां उत्तम शब्द सम्यग्ज्ञान सहित होनेकों कहा है। उत्तम क्षमा त्रैलोक्यमें सार है उत्तम क्षमा संसार समुद्रमें तारनेवाली है उत्तम क्षमा है सो रत्नत्रयको धारण करनेवाली

है उत्तम क्षमा दुर्गतिके दुःखनिको हरनेवाली है जिनके क्षमा होय तिनके नरक अरतिर्यञ्च दोऊगतिनमें गमन नहीं होय है उत्तम क्षमाके साथ अनेकगुणनके समूह प्रगट होय है मुनीश्वरनकों तो अतिप्यारी उत्तम क्षमा है उत्तम क्षमाके लाभकों ज्ञानीजन चिन्तामणि रत्न माने हैं अरउत्तम क्षमाही मनकी उज्जलता करे है क्षमा गुणविना मनकी उज्जलता अरस्थिरता कदाचित ही नहीं होय है वांछित सिद्ध करनेवाली एक क्षमाही है। यहां क्रोधके जीतनेको ऐसा विचार करना चाहिये यदि कोई आपकूं दुर्वचनादिकर दुखितकरे गाली दे चोर कहै अन्यायी, पापी, दुराचारी, दुष्ट, नीच, दोगला, चांडाल, पापी, कृतघ्नी, ऐसे अनेक दुर्वचन कहे तो ज्ञानी पुरुष ऐसा चिन्तवन करे है जो याका मैं अपराध किया है कि नहीं किया है। जो मैं याका अपराध किया तथा राग द्वेष मोहका वशतें कोई बात करि दुखाया है तदि तो मैं अपराधी हूं मोकों गालीदेना धिकार देना नीच चोर कपटी अधर्मीकहना न्यायहै। मोकूं इस सिवाय भी दंड देता सोभी ठीक है मैं अपराध किया है मोको गाली सुन रोष नहीं करना ही उचित है। अपराधी को नरक में दंड भोगना पड़े है तातें मेरा निमित्त सों याको दुखभया तदि क्लेशित होय दुर्वचन कहै है एसा विचारकर क्लेशित नहीं होय क्षमाही करे है। अरजो दुर्वचन कहने वाला मंद कषायी होय तो आपजाय क्षमा ग्रहण करावने को कहै भोकृपाल! मैं अज्ञानी प्रमादके वस वाकषायके वस होय आपका चित्तको दुखाया सो अबमें अपराध माफ कराऊं हूं आइन्दा ऐसा कार्य भूलकरभी नहीं करूंगा एकवार भूलजाय ताकी भूलकों महन्त पुरुष माफ करें हैं अरजो आगला न्यायरहित तीव्र कषायी होय तो उससे अपराध माफ करानेको जाय नहीं कालान्तरमें क्रोध उपशान्त हुआ पीछे माफ करावे। अरजो आप अपराध नहीं किया अरईर्षा भावतें केवल दुष्टतातें आपको दुर्वचन कहै तथा अनेक दोष लगावे तो ज्ञानी किंचित संक्लेश नहीं करें ऐसा विचारें जो मैं याकाधन हर्‍या होय तथा जमी जायगा खोसी होय तथा इसकी जीविका बिगाड़ी होय

चुगली खाई होय तौ मोका पश्चाताप करना उचित है अरजो अपराध नहीं किया तदि मोकों कुछ फिकर नहीं करना । यो दुर्वचन कहै है सो नाम को कहै है तथा कुलको कहै है सो नाम मेरा स्वरूप नहीं जाति कुलादि मेरा स्वरूप नहीं मैं तो ज्ञायक (जाननेवाला) हूं जिसको कहै सो मैं नहीं । मैं हूं तिसकोवचन पहुंचे नहीं इस वास्ते मोको क्षमा ग्रहण करनाही श्रेष्ठ है । बहुरि जो यो दुर्वचन कहै है सो मुखयाका, अभि प्राययाका, जिव्हा दन्त ओष्ठयाका, अर शब्द उपज्या ताका श्रवण करमैं जो विकारको प्राप्त होऊं तो यह मेरी बडी अज्ञानता है । बहुरि ईर्षावान दुष्ट पुरुष जो मोको गाली दे है सो स्वभाव करि देखिये तो गाली कोइ वस्तुही नहीं है मेरे कहीं भी गाली लगी नहीं दीखै है अवस्तुमें देने लेनेका व्यवहार ज्ञानवान पुरुष कैसे संकल्प करै । बहुरि जो मोको चोर कहै अन्यायी कपटी अधर्मी इत्यादिक कहै तहां ऐसा विचार करे जो हे आत्मन ! तू अनेकवार चोर हुआ अनेक जन्ममें व्यभिचारी ज्वारी अभक्ष भक्षी भील चांडाल चमार गोला बांदा कूकर शूकर तथा इत्यादिक निंद्य तथा अधर्मी पापी कृतघ्नी होय होय आया अर संसार में भ्रमण करता अनेक वार होऊंगा अब तो कूकर शूकर चोर चाडाल कहै ताको सुनकर क्षोभित होना बडी अज्ञानता है अथवा ये दुष्ट जन दुर्वचन कहै हैं सो इसका अपराध नहीं हमारा बांधा पूर्व जन्मकृत कर्मका उदय है सो इसके दुर्वचन कहनेके द्वारकर हमारे कर्मका निर्जरा होय है सो हमारे बडा लाभ है इनका यह भी उपकार है जो ये दुर्वचन कहनेवाले अपने पुण्यसमूहका तो रोष कहने करि नाश करै है अरमेरे किये पापोंको दूर करै है ऐसे उपकारी सज्जनोंमें रोष करूं तो मेरे समान कोई अधम नहीं है । बहुरि यो तो मोको दुर्वचनही कह्या है मार्‍या तो नहीं रोषकरि मारने लगि जाय है क्रोधी तो अपने स्त्री पुत्र पुत्री दासादिककों मारै है सो याको मार्‍या नहीं येही बडा लाभ है अर जो दुष्ट आपको मारै भी तो ऐसा विचारै जो मोको मार्‍याही प्राण रहित तो नहीं किया दुष्ट तो

आपका मरण नहीं गिनकरके भी अन्यको मारे है येही मेरे लाभ है। अर जो प्राण रहितही करे तो ऐसा विचारे जो एक बार मरनाही है कर्मका ऋण चुक्या। हम यहां ही कर्मके ऋणतें रहित भये हमारा धर्म तो नष्ट नहीं भया। प्राण धारण तो धर्महीत सफल है ये द्रव्य प्राण तौ पुद्गलमय हैं मेरा ज्ञान दर्शन क्षमादि नर्व ये भाव प्राण हैं इनका घात क्रोध करि नहीं भया इस समान मेरे लाभ नहीं है। बहुरि जो कल्याणरूप कार्य्य हैं तिनमें अनेक विघ्न आवे ही है जो मेरे विघ्न आया सो ठीकही है। मैं तो अब समभावको आश्रय करूं अर जो उपद्रव आवतमें क्षमाछोडि विकारको प्राप्त होऊंगा तो मोको देखि अन्यमंद ज्ञानी तथा कायर त्यागी तपस्वी धर्मतें शिथिल हो जायंगे तो मेरा जन्म केवल अन्यके क्लेशके अर्थही भया तथा मैं वीतराग धर्म धारण करके हू क्रोधी विकारी दुर्वचनी होऊं तौ मोको देखि अन्य हू क्रोधमें प्रवर्तने लग जाय तब धर्मकी मर्य्यादा भंग कर पापकी परिपाटी चलानेवाला मैंही प्रधान भया तातें क्षमा गुण प्राण जाते भी धन अभिमान नष्ट होते भी मोको छोडना उचित नहीं। बहुरि पूर्वमें अशुभ कर्म उपजाया ताका फल मैंही भोगूंगा अन्य जे जन हैं ते सब निमित्त मात्र हैं इनके निमित्ततें पाप उदय नहीं आता तो अन्यके निमित्ततें आता। उदयमें आया कर्म तो फल दिये विना टलता नहीं बहुरि येलौकिक अज्ञानी मेरे विषें क्रोधित होय दुर्वचनादिक करि उपद्रव करे हैं अर जो मैं भी इनको दुर्वचनादि करि उत्तर करूं तो मैं तत्वज्ञानी अर ये अज्ञानी दोऊ समान भया हमारा तत्वज्ञानी पना निरर्थक भया। न्याय मार्गने उदयमें आया मेरा पाप कर्म ताको सन्मुख होते कौन विवेकी अपना आत्माको क्रोधादिकनके वस करे। भो आत्मन् पूर्वे बांध्या जो असाता कर्म ताका अब उदय आया ताको इलाज रहित अशोक जानि करके समभावनि तें सहो जो क्लेशित होय भोगोगे तो असाताकों तो भोगोहीगे अर नवीन असाताका बंध और करोगे तातें होनहार दुखने निःशंकित होय समभावतेही सहो ये दुष्टजन

वहीत हैं अपना सामर्थ करके मेरे रोषरूप अग्निको प्रज्वलितकरि मेरा समभावरूप सम्पदाको दग्ध किया चाहे हैं अब यहां असावधान होय क्षमाको छोड दूंगा तो अवश्यही समताभाव नष्ट करके धर्म और यशका नाश करनेवाला हो जाऊंगा तातें दुष्टनिका संसर्गमें सावधान रहना उचित है। ज्ञानी मनुष्य तो नहीं सहा जाय असा क्लेशकों उत्पन्न होते हू पूर्व कर्मका नाश होना जानि हर्षितही होय है जो वचन कंटक निकरि वेध्या जोमें क्षमा छांडि दूंगा तो क्रोधी अरमें समान भया अरजो वैरी नाना प्रकारका दुर्वचन मारण पीडन करके मेरा इलाज नहीं करै तो मैं संचय किये अशुभ कर्म तिनतें कैसे छूटता तातें वैरी हू हमारा उपकार किया है अथवा तातें विवेकी होय जो जिन आगमके प्रशादतें समता भावका अभ्यास किया ताकी परीक्षा लेनेको ये वैरीरूप परीक्षा स्थान प्रगट भया है सो मेरे भावनिकी परीक्षा करिये परीक्षा करनेको ही कर्म उदय भये हैं जो समभावकी मर्य्यादको भेद करिजो मैं वैरीनिमें रोष करूं तो व्रत नत्रका धारक हूं मैं सम भावको नहिं प्राप्त होय क्रोधरूप अग्निमें भस्म होय जाऊं। मैं वीतरागके मार्गमें प्रवर्तन करनेवाला संसारकी स्थिति छेदनेमें उद्यमी अर मेराही चित्त जो द्रोहको प्राप्त होजाय तो संसारके मार्गमें प्रवर्तते मिथ्या दृष्टीनके समान मेंभी भया अर जो दुष्ट जननको न्याय धर्मरूप मार्ग समझाय अर क्षमा ग्रहण कराया जो नहीं समझे अर क्षमा ग्रहण नहीं करे तो ज्ञानी जन उससे रोष नहीं करे। जैसा विष दूर करनेवाला वैद्य कोईका विष दूर करनेको अनेक अनेक औषधादि देय विष दूर किया चा है अर वाका विष दूर नहीं होय तो वैद्य आप विष नहीं खाय है जो याका विष दूर नहीं भया तो मेंहू विष भक्षण करि मरूं ऐसा न्याय नहीं है तैसा ज्ञानी जनहू दुष्टजन की पहली दुष्टताकी जाति पिछाने जोये दुष्टता छांडेगा वा नहीं छांडेगा वा अधिक दुष्टता धरेगा ऐसा विचार विपरीत परिणमता दिखे ताको तो उपदेशही नहीं देना अर कुछ समझने लायक योग्यता दीखे तो न्याय वचन हित मितरूप कहना अर दुष्टता नहीं छांडे तो आप क्रोधी नहीं होना जो मोको दुर्वचनादि उपद्रव कर

नहीं कम्पायमान करे तो मैं उपशम भाव करि धर्मका शरणा कैसे ग्रहण करता ताते जो मोको पीडा करनेवाला है मोको पापते भयभीत करि धर्मसों सम्बन्ध कराया है तातें पीडा करनेवाला है मेरा प्रमादी पना छुडाय वडा उपकार किया है। बहुरि जगतमें केतक उपकारी तौ ऐसे है जो अन्य जनके सुख होनेके निमित्त अपना शरीरकों छोडे हैं अर धनको छोडे हैं तौ मेरे दुर्वचन बंधनादिक सहनेमें कहा जायगा मोको दुर्वचन कहेही अन्यको सुख होजाय तो मेरे कहा हानि है? बहुरिजो अपनेको पीडा करनेवालेतें रोष नहीं करूं तो वैरीकैतौ पुण्यका नाश होय है अर मेरे आत्माके हितकी सिद्धि होय है अर पीडा करने वालेतें रोप करूं तो मेरे आत्माके हितका नाश होय दुर्गति होय इस लिये प्राणोंका नाश होते हू दुष्टनिप्रति क्षमा करनाही एक हित सत्पुरुष कहे हैं तातें आत्म कल्याणकी सिद्धीके अर्थ क्षमाही ग्रहण करूं अथवा दुष्ट न करि दुर्वचनादिक पीडा करने ते मेरे जो क्षमा प्रगट भई है सो मेरे पुण्यका उयतें या परीक्षा भूमि प्रगट भई है जो मैं इतना कालतें वीतरागका धर्म धारण किया सो अब क्रोधादिकके निमित्तते साम्य भाव रह्या ऐसी परीक्षा करूं। बहुरि सोई साम्य भाव प्रशंसा योग्य है अर सोही कल्याण कारण है जो मारनेके इच्छुक निर्दयी निकरि मलीन नहीं किया गया। बहुरि चिरकालतें अभ्यास किया शास्त्र करके अर साम्य भाव करके कहा साध्य है यो प्रयोजन पडा व्यर्थ हो जाय है धैर्य्य तो सोही प्रशंसा योग्य है जो दुष्टनिके कुवचनादि होते नहीं छूटे दृढ रहे उपद्रव आये विना तौ समस्त जन सत्य शौच क्षमाके धारक बन रहे है जैसे चंदनके वृक्षको कुहाडा काटे तौभी कुहाडेका मुखको सुगंधही करे तैसे जाकी प्रवृत्ति होय सोही सिद्धिको साध्या है। बहुरि अन्यकरि किया उपसर्गते वा स्वयमेव आया उपसर्ग तिनकरि जाका चित कलुषित नहीं होय सो अविनाशी संपदाको प्राप्त होय है। अज्ञानी है ते अपने भावन करि पूर्वे किया पाप कर्म ताके अर्थि तौ रोष नही करे अर जो कर्मके फल वाह्य निमित्त तिन प्रति क्रोध करे है। जिस कर्मका नाशतें मेरा संसारका सन्ताप नष्ट होजाय सो कर्म स्वयमेव भोग्यासो वांछित सिद्ध भया। बहुरियो संसार रुप वन

अनन्त संक्लेशन करिभऱ्या है इसमें वसनेवालाके नानाप्रकारके दुख नहीं सहने योग्य है कहा ? संसारमें तो दुखही है जो इस संसारमें सम्यग्ज्ञान विवेक रहित अरजिन सिद्धान्ततें द्वेष करनेवाले अरमहानिर्दयी अरपरलोकके हितके अर्थ जिनके बुद्धि नहीं अरक्रोधरूप अग्नि करि प्रज्वलित अर दुष्टता करि सहित विषयनकी लोलुपता करि अंध हटग्राही महाअभिमानी कृतघ्नी ऐसे बहुत दुष्टजन नहीं होते तो उज्जल बुद्धि के धारक सत्पुरुष व्रततपाचरण करिमोक्षके अर्थि उद्यम कैसे करते ? ऐसे क्रोधी दुर्वचनके बोलन हारे हटग्राही अन्यायमार्गीनिकी अधिकता देखकरकेही सत्पुरुष वीतरागी भये हैं अरजोमें बड़े पुण्यके प्रभावतें परमात्माका स्वरूपको ज्ञाता भयो अरसर्वज्ञकरिउप देश्यापदार्थनिका हू निर्णयरूपजाण्या अरसंसारके परिभ्रमणादिकते भयभीत होय वीतराग मार्गमें भीप्रवर्तन किया अबभी जो क्रोधके वश होऊंगा तो मेरा ज्ञान चारित्र समस्त निष्फल होयगा अरधर्मका अपयश करावनहारा होय दुर्गतिका पात्र होऊंगा । बहुरि औरभी पद्मनंदि मुनि कहा है जो मूर्ख जनकरि बाधा पीड़ा अरक्रोधके वचन अरहास्य अपमानादिक होते भी जो उत्तमपुरुषनका मन विकारको प्राप्त नहीं होय जाको उत्तमक्षमा कहिये है सो क्षमा मोक्ष मार्गमें प्रवर्तते पुरुषके परमसहायताको प्राप्त होय है । विवेकी चिन्तवन करे है हमतो रागद्वेषादि मलरहित उज्जल मन करितिष्ठां अन्यलोक हमको खोटा कहो तथा भला कहो हमको कहा प्रयोजन है । वीतराग धर्मके धारकनको तो अपने आत्माको शुद्धपना साधने योग्य है । जो हमारा परिणाम दोष सहित है और कोऊ हिनू हम कोभला कह्या तो भला नहीं हो जावेंगे अर हमारा परिणाम दोष रहित है और कोई हमको वैर बुद्धितें खोटा कह्या तो हम खोटा नहीं हो जावेंगे फलतो अपनी जैसी चेष्टा आचरण होयगा तैसा प्राप्त होयगा जैसे कोऊ काचको रत्न कह दिया तोभी मोलतो रत्नही पावेगा काचखंडका बहोत धनको न देवे । बहुरि दुष्ट-जन हैं जाकातो स्वभाव परके दोष कहाहू नहीं होय तोभी परके दोष कह्या विना सुखको प्राप्त नहीं होय ताते दुष्टजन है सो मेरेमाही अविद्यमानभी दोष लोकमें घरघरमें समस्त मनुष्यनि प्रति प्रगट करि

सुखी होउ अरजो धनका अर्थी है सो सर्वस्वग्रहणकर सुखी होउ अरजो वैरी प्राणहरणका अर्थी है सोशीघ्रही प्राणहरण अरो अरस्थानको अर्थी है सो स्थान हरोमें मध्यस्थहूं रागद्वेष रहित हूं समस्त जगतके प्राणीके किसी प्रकार दुखमति होउ यहमें घोषणा करि कहहूं क्योंकि मरा जीवित तो आयुकर्मके आधीन है अरधनका तथा स्थानका जावना रहना पुण्यपापके आधीन है हमारें किसी अन्यजीवसे वैरविरोधनहीं है सबके प्रतिक्षमा है। बहुरि हे आत्मन् जे मिथ्या दृष्टी अर दुष्टता अर-हित अहितको त्रिवेक रहित मूढ ऐसे मनुष्यनि करि किये जे दुर्वचनादि उपद्रवनितें अस्थिर हुआ बाधाको मानि क्लेशित हो रहा है सो तीन लोकका चूडामणि भगवान वीतराग है ताहि नहीं जाना है कहा ? तथा वीतराग धर्मकी उपासना नहीं कियी कहा ? तथा लोकनिको मूर्ख नहीं जान्या कहा ? मोही मिथ्या दृष्टि मूढनिके ज्ञानतो विपरी-तही होय है कर्मनिके वसि है तातें इनमें क्षमाही ग्रहण करना योग्य है। क्षमा है सो इस लोकमें परम शरण है माताकी ज्यों रक्षा करने-वाली है बहौत कहा कहिये जिन धर्मका मूल क्षमा है याके अधार सकल गुण हैं कर्म निर्जराको कारण है हजारों उपद्रव दूरकरनेवाली है यातें धन जाते। जीवितव्य जाते हू क्षमाको छांडना योग्य नहीं है। कोऊ दुष्टता करि आपको प्राणरहित करे तिसकालमें हू कटुक वचन-मति कहो जो मारनेवालेकोभी अन्तर्गति वैर छोडि ऐसे कहो जो आपतो हमारे रक्षकही हो परंतु हमारा मरण आय पहुंचा तदि आप कहा करो हमारे पापकर्मका उदय आगया तोभी हमारा वडा भाग्य है जो आप सारिखे महापुरुषनिके हस्तादिकतें हमारा मरण होय अरजो हम सारिखे अपराधोकों आप दंड नहीं द्यो तो मार्गमलीन हो जाय और हम अपराधको फल नरक तिर्यञ्च गतिमें आगे भोगते सो आप हमको ऋण रहित कियामें आपसे वैर विरोध मन वचन कायतें छांडि क्षमा ग्रहण करूं हूं और आपभी मुझे अपराधको दंड देव क्षमा ग्रहण करो। यें रोगादिक कष्टको भोग करि अति दुखतें मरण करतो सो धर्मका

शरणागत रहित होय सज्जनोंकी कृपा सहित मरणकाल्में इस प्रकार मारनेवाले सोभी वैरत्याग समभाव करना सो उत्तम क्षमा है। इस प्रकार क्षमा धर्मका वर्णन किया ॥ १ ॥

अथ मार्दव धर्म वर्णन.



मृदुत्वं सर्वभूतेषु कार्य जीवेन सर्वदा ।
काठिन्यं त्यज्यतेनित्यं धर्म बुद्धि विजानता ॥ १ ॥

अर्थात्—(धर्म बुद्धि विजानता) जो जीव धर्म बुद्धिको जानते हैं ऐसे जीवोंको उचित है कि (सर्व भूतेषु जीवेन सर्वदा मृदुत्वं) वसमस्त जीवोंमें सदा मृदुता रक्खें अर्थात् अपने परिणाम सदा कोमल रक्खें (काठिन्यं त्यज्यते नित्यं) और कठिण परिणामोंका सदा त्याग करें ॥ १ ॥

मद्दवभवमद्दणु माणणिकंदणु दयधम्महु मूलजि विमलु ।
सव्वहि हियधारउ गुणगणसारउ तिसउ वओसंजम सयलु ॥ २ ॥

अर्थात्—(मद्दव भवमद्दणु) यह मार्दव धर्म जन्म मरणरूप संसारका नाश करने वाला है (माणणिकंदणु) मान कषायको सर्वथा दूर कर देने वाला है (दयधम्म जुमूल) दयाधर्मका मूल कारण है (विमुलु) एक अक्षय और निर्मल गुण है (गुणगणसारउ) आत्माके समस्त गुणोंमें सारभूत गुण यही है (तिसउव ओसंजमसयलु) इस मार्दव धर्मके होते हुए ही समस्त व्रत और संजम सफल होते हैं ॥ २ ॥

मद्दउ माणकसाय विहंडणु । मद्दउ पंचेंदिय मणदंडणु ॥
मद्दउ धम्मेकरुणा वल्ली । पसरइ चित्त महीहिंण वल्ली ॥ ३ ॥

अर्थात्—(मद्दउ माणकसाय विहंडणु) मार्दव धर्म मान कषायको नाश करनेवाला है (मद्दउ पंचेंदिय मणदंडणु) तथा पांचो इन्द्रिय और मनको निग्रह करनेवाला भी मार्दव धर्म है (मद्दउ धम्मे करुणावल्ली पसरइ चित्त मही हिणवल्ली) इस मार्दव धर्मके प्रसादसेही इस मनुष्यकी चित्तरूपी पृथ्वीमें नवीन करुणारूप बेल फैलती है भावार्थ—अहिंसा धर्मका कारण करुणा है और करुणा मार्दव धर्मसेही होती है ॥ ३ ॥

मद्दउ जिणवर भत्ति पयासइ । मद्दउ कुमइ पसरु णिण्णासइ ॥
मद्दवेण बहुविणउ पवट्टइ । मद्दवेण जिणिवइरु उहट्टइ ॥ ४ ॥

अर्थात्—(मद्दउ जिणवर भत्तिपयासइ) मार्दव धर्मसे जिनेंद्र देवकी भक्ति प्रकाश होती है (मद्दउ कुमइपसरु णिण्णासइ) और मार्दव धर्म कुमतिके प्रसारको नाश करता है अर्थात् मार्दव धर्म होतेहु एकुमति नहीं रहने पाती (मद्दवेण बहुविणय पवट्टइ) दर्शन, ज्ञान, चारित्र विनय और व्यवहार विनय मार्दव धर्मसेही वर्तता है (मद्दवेण जिणिवइरु उहट्टइ) और मार्दव धर्मसे लोकमें अनेक तरहके बैरभी दूर होजाते हैं ॥ ४ ॥

मद्दवेण परिणामं विसुद्धि मद्दवेण विहुलोयहु सिद्धी ।
मद्दवेण दोविहु तउ सोहइ मद्दवेण णरातिजग विमोहइ ॥ ५ ॥

अर्थात्—(मद्दवेण परिणाम विसुद्धी) मार्दव धर्मसे आत्माके परिणाम अत्यंन्त निर्मल होजाते हैं (मद्दवेण विहुलोयहु सिद्धी) मार्दव धर्मसे इस लोक तथा परलोक सम्बन्धी कार्य्य सिद्धी होती है (मद्दवेण दोविहु तउ सोहइ) आभ्यन्तर तप और बाह्यतप दोनो मार्दव धर्मसेही सोभायमान होते हैं (मद्दवेण णरातिजग विमोहइ) मार्दव धर्मकी ऐसी महिमा है कि इसके होते हुए मनुष्य तीनो जगतको मोहित करलेता है ॥ ५ ॥

मद्दउ जिण सासणि जाणिज्जइ । अप्पापरसरूव भासिज्जइ ॥
मद्दउ दोस असेस णिवारइ । मद्दउ जम्मउ अहि उत्तारइ ॥ ६ ॥

अर्थात्—(मद्दउ जिण सासण जाणिज्जइ) एक जैन शासनहीं ऐसा है कि जिसमें मार्दव धर्म जाना जाता है अर्थात् दूसरे मतोंमें ऐसे उत्तम धर्मकी गणना भी नहीं की है और आत्मासे भिन्न पुद्गलादिकका स्वरूप जाना जाता और निश्चय किया जाता है (मद्दउ दोस असेस णिवारइ) एकही मार्दव गुणके होनेसे दूसरे समस्त दोष दूर होजाते हैं (मद्दउ जम्मउ अहि उत्तारइ) यह मार्दव धर्म ही जन्म मरणरूपसमुद्र से जीवोंको पार कर देता है ॥ ६ ॥

घत्ता—सम्मदंसण अंगु मद्दउ परिणामु जिमुणहु ।
इयपारियाणि विचिंत मद्दउ मुम्मउ अमलथुनउ ॥ ७ ॥

अर्थात्—(सम्मदंसण अंगु मद्दनु परिणामुजिमुणहु) यह मार्दवधर्म आत्माका एक परिणाम है और सम्यग्दर्शनका अंग है। (इय परियाणि विचित्त मद्दउधम्महु अमल थुणहु) इस लिये ऐसा जानकर अपने चित्तमें इस निर्मल मार्दव धर्मको धारण करो और सदा इसकी स्तुति करते रहो ॥ ७ ॥

यहां विशेष ऐसा जानना चाहिये उत्तम मार्दव नाम धर्म (आत्मका स्वभाव) का स्वरूप ऐसा है जो मान कषायकरि आत्मामें कठोरता होय है तिस कठोरताका अभाव होनेसे जो कोमलता होय सो मार्दव नाम आत्माका गुण है। और आत्माका तथा मान कषायका स्वरूप अनुभव कर मानमदका छोडना सो उत्तम मार्दव नाम गुण है। मानकषायतो संसारमें भ्रमणका कारण है और मार्दव संसारके परिभ्रमणका नाश करनेवाला है। यह मार्दव गुण दया धर्मका कारण है अभिमानीके दया धर्मका मूल होते अभाव जानना कठोर परिणामीतो निर्दयीहीं होय मार्दव गुण सब जीवोंके हित करनेवाला है। जिन

जीवोंके मार्दव गुण है तिनहीका व्रत पालना संजम धारणा ज्ञानका अभ्यास करना सफल है अभिमानीका निष्फल है। मार्दव नाम गुण कषायका (क्रोधमान, माया, लोभ) नाश करनेवाला है अपथ्य इन्द्रिय तथा मनको वश करनेवाला है मार्दव धर्मके प्रसाद तें चित्तरूप भूमिमें करुणा रूपी वेल नवीन फैले है मार्दव गुण करकेंही जिनेन्द्र भगवानमें तथा शास्त्रनिमें भक्तिका प्रकाश होय है मदसहितकें जिनेन्द्र भगवानके गुणोंमें प्रीति नहीं होय है मार्दव गुणकरि कुमति ज्ञानका नाश होय है कुमति नही फैले है अभिमानीके अनेक कुबुद्धि उपजे है मार्दव गुणकर बडा विनय प्रवर्ते है मार्दव गुण करके बहुत कालका वैरी हू वैर छांडे है। मान घटे तब परिणामनकी उज्वलता होय कोमल परिणाम करकेही दोनो लोककी सिद्धी होय कोमल परिणामोंका इस लोकमें सुयश होय है परलोकमें स्वर्गगतिकी प्राप्त होय है कोमल परिणाम करकेंही अन्तरंग बहिरंग तप शोभायमान होय है अभिमानीका तप भी निन्दायोग्य है कोमल परिणामोमें तीन जगतके जीवोंका मन रंजाय मान होय है। मार्दव करिके ही जिनेन्द्रका शासन जानिये है मार्दव करिके ही अपना परका स्वरूपका अनुभव होय है कठोर परिणामोंकें आपा परका विवेक नही होय है और मार्दव करके ही समस्त दोषनिका नाश होय है मार्दव परिणाम संसार समुद्र तें पार करे है। इसलिये मार्दव परिणामको सम्यग्दर्शनका अंगजान निर्मल मार्दव धर्मका स्तवन करो। संसारी जीवोंके अनादि कालका मिथ्या दर्शनका उदय होरहा है तिस कारण तें पर्य्याय बुद्धी हुआ (शरीरकूं अपना रूप समझना) जातिकों कुलकों विद्याकों वलकों ऐश्वर्य्यकों रूपको तपकों धनकों अपना स्वरूपमानि इनका गर्भ रूप होय रहा है जिसको यह ज्ञान नहीं है कि ये जाति कुलादिक समस्त कर्मके उदयके आधीन पुद्गलके विकार हैं विनाशीक हैं मैं अविनाशीज्ञान स्वभाव अमूर्तिक हूं मैं अनादि कालतें अनेकजाति कुल वल ऐश्वर्य्यादिक पाय पाय छोडे है मैं अब कोनमें आपा धारण करूं समस्त धन योवन इन्द्रियाधीन ज्ञानादिक विनाशीक हैं क्षणभंगुर हैं इनका गर्व करना संसार परिभ्रमणका कारण है। इस संसारमें स्वर्ग लोकका महारिद्धीका धारक देव भी मरकर एक समयमें एक इन्द्रिय

आय उपजे है तथाकूकर शूकर चांडालादिक पर्य्यायको प्राप्त हो जाय है तथा चक्रवर्ति नवनिधी चवदह रत्नका धारक एक समयमें मरि सप्तम नरकका नारकी होजाय है तथा वलभद्र नारायणका ऐश्वर्य्य नष्ट हो गया अन्य की कहा कथा है जिनकी हजारों देव सेवा करते थे तिनके पुण्यका क्षय होते कोई एक मनुष्य भी पानी पिलानेवाला नहीं रहा अन्य पुण्य रहित जीव कैसे मदोन्मत बन रहे हैं। बहुरिजे उत्तम-त्तपश्चरण करनेमें उद्यमी हैं। बहुरिजे उत्तम दानी हैं ते भी अपने आत्माको अतिनीचा माने हैं तिनके मार्दव धर्म होय है यह विनयवान-पना तथा मदरहितपना समस्तधर्मका मूल है समस्त सम्यग्ज्ञानादिगुणको आधार है जो सम्यग्दर्शनादिगुणनका लाभ चाहो हो अरउज्वल यश चाहो हो तो मदनिको त्यागि कोमल पणा ग्रहण करो मद दूर हुए बिना विनयादिक गुण, वचनकी मिष्टता, पूज्यपुरुषनका सत्कार, दान सन्मानगुण एक भी प्राप्त नहीं होयगा। अभिमानीकी समस्त निंदाकरे हैं अभिमानीका समस्त लोक अधः पतन चाहे हैं। स्वामी भी अभिमानी सेवकको त्यागे है अभिमानीको गुरूजन विद्या देनेमें उत्साह रहित होय हैं अपना सेवक परान्मुख हो जाय मित्र भाई हितू पडौसी याका अधः पतन ही चाहे हैं पिता गुरु उपाध्यायतो पुत्रको शिष्यकों विनयवन्त देखकरि ही आनंदित होय हैं। अविनयी अभिमानी पुत्र तथा शिष्य बडे पुरुषनके मनको भी सन्तापितकरै है क्यों कि पुत्रका तथा शिष्यका तथा सेवकका तो यही धर्म है जो नवीन कार्य्य करना होय सो पिता गुरुस्वामीकी आज्ञालेय करे तथा आज्ञाका अवसर नमिले तो अवसर देखि शीघ्रजना वे येही विनय है येही भक्ति है जिसके मस्तक ऊपरगुरु विराजे तें धन्य भाग हैं विनयवन्त अभिमान रहित पुरुष हैं ते समस्त कार्य्य गुरुनको जनायदे हैं वे पुरुष धन्य हैं जो इस कलिकालमें मानर-हित कोमल परिणाम करि समस्त लोकमें प्रवर्ते हैं। जो उत्तम पुरुष हैं ते बालकमें वृद्धमें निर्धनमें रोगीनमें बुद्धि रहित मूर्खोंनमें तथा जाति कुलादिहीन पुरुषोंमें भी यथा योग्य प्रिय वचन आदर सत्कार स्थानदान कदा चित्ततनहीं चूके हैं प्रिय वचन ही कहें उत्तम पुरुष उद्धतताका वचन तथा उद्धतताका वस्त्र आभरण नहीं पहरे उद्धत

पणाका तथा परके अपमानका कारण देन लेन विवाहादि व्यवहार कार्य्य उद्धत होय अभिमानी पनाका चलना बैठना बोलना आदि दुरहीतें छोडे हैं तिस पुरुषके लोकमें पूज्य मार्दव गुण होय है। धन पावना रूप पावना ज्ञान पावना विद्या कला चतुराई पावना ऐश्वर्य्य पावना बल पावना जाति कुलादि उत्तम गुण जगन्मान्यता पावना जिनका सफल है जो उद्धतता रहित अभिमान रहित नम्रता सहित विनय सहित प्रवर्ते हैं अपने मनमें आपको सबते लघुमानता कर्मके आधीन जाने हैं सो कैसे गर्व करे नहीं करे। ऐसा जानभो भव्यजन हो सम्यग्दर्शनका अंग इस धर्मको जाणि चित्तके विषे ध्यान करो स्तवन करो इस प्रकार मार्दव धर्मका वर्णन किया।

अथ आर्जव धर्म वर्णन।



आर्जवं क्रियते सम्यग्दुष्ट बुद्धिश्च त्यज्यते।
पाप चिन्तान कर्तव्या श्रावके धर्म चिन्तकैः॥ १॥

अर्थात्—(श्रावकै धर्मचिन्तकै) धर्मका चिन्तवन करनेवाले श्रावकोंको उचित है कि (आर्जवं क्रियते सम्यक्) वे अपने परिणाम सदा सरल रक्खें और (दुष्ट बुद्धिश्च त्यज्यवे) दुष्ट बुद्धिका सदा त्याग करें तथा (पाप चिन्तान कर्तव्या) कभी पापरूप कार्य्योंका चिन्तवन न करें यही उत्तम आर्जव धर्म है॥ १॥

धम्महुवरलक्खणु अज्जवथिरमणु दुरियविहंडणु सुहजणु।
तंइत्थजिकिज्जइ तंपालिज्जइ तंणिसुणिज्जयरवयजण॥ २॥

अर्थात—(धम्महुवरलक्खणअज्जव) धर्मकाउत्तमलक्षण आर्ज वही है अर्थात मन बचन कायकीसरलताका नाम अर्जव धर्म है (थिरमणु)

यह आर्जव धर्म स्थिर मनसे किया जाता है (दुरियविहंडणु) समस्त पापोंको दूर करनेवाला (सुहजणणु) और सुखके देनेवाला यह आर्जव धर्मही है। इसलिये समस्त कर्मोंकेक्षयकरनेवाले (तं इत्थजि-किज्जइ) इस आर्जव धर्मके सेवनकी इच्छा करो (तंपालिज्जइ) पालन करो (तंणिमुणिज्जइखयजणणु) और ध्यानसे सुनो ॥ २ ॥

जारिसुणियचित्तिहचिंत्तिज्जइ, तारिसुअणहंपुणभासिज्जइ ।
किज्जइपुण तारिसु सुहसंचणु । तंअज्जवगुण मुणहअणवंचणु ।३।

(अर्थात—(जारिसुणियचित्तिहचित्तिज्जइ) जोजीव जैसा अपने चित्तमें चिन्तवन करें (तारिसुअणहुंपुण भासिज्जइ) वैसाही दुसरेंके लिये कहे (किज्जइ) और फिर वैसाही करें (पुणतारि सुसुह-संचणु तंअज्जवगुणमुणहअवंचणु) उसकोही समस्तसुखोंका संचय कर-नेवाला वंचकतारहित आर्जव गुणजानो (भावार्थ सरलपरिरिणामोंसे मन वचन कायकी एकसी क्रिया करके जो दुसरेको धोका नही देना वही आर्जव गुण है ॥ ३ ॥

माया सल्लमणहुणिस्मारहु अज्जवधम्मपवित्त वियारहु ।
वउतउमाया वियहुणिरत्थउ अज्जउसिवपूरपंथ हुसत्थउ ॥ ४ ॥

अर्थात—मोभव्यजनो (मायासल्लमणहुणिस्मारहु) अपने चित्तसे मायाशल्यको निकालकर (अज्जवधम्मुपविक्त वियारउ) इस पवित्र आर्जव धर्मका विचार करो (वउतउ माया वियहुणिरत्थहु) मायावी अर्थात कपटकरनेवाले पुरुषके व्रत करना आदि सभी व्यर्थ है (अज्जउ सिवपुर-पंथउसतउ) और यह आर्जव धर्ममोक्ष जानेके लिये सहायकहै। भावार्थ माया एक शल्य है। शल्यवाणको कहते हैं। हृदयमें चुभा हुआ वाण जैसे दुखदाई होता है उसी तरह मायाभी दुखदायक है इस लिये मायाको चित्तसे निकालकर मोक्षके देनेवाले इस आर्जव धर्मका चितवन करो ॥ ४ ॥

जत्थकुटिल परिणाम छंडिज्जइ, तहअज्जवधम्मजुसंपज्जइ।
दंसणणाणसरुवअखंडउ। परमअतिंदिय सुखकरंडउ ॥ ५ ॥

अर्थात्—(जत्थकुटिलपरिणामछंडिज्जइ) जहां कुटिल परिणामोका त्याग किया जाता है (तहअज्जवधम्मजुसंपज्जइ) वहीं आर्जव धर्मउत्पन्न होता है अर्थात कुटिल परिणामोंका त्याग करनाही आर्जव धर्म है (दंसणणाणसरुवअखंडउ परमअतिंदि यसुक्खकरंडउ) आत्मामें जो इस चैतन्यके ऐसे प्रचंड भाव होते हैं जो किसम्यग्दर्शन स्वरुप है, ज्ञानस्वरुप है, अवि नाशिक, अतिंद्रिय, परम सुखके स्थान भूत है ॥५॥

अप्पेअप्पहु भवउतरंडउ एरिसुचेयणभाव पयंडउ।
अज्जवेण वइरिउमणखुब्भइ सोपुणअज्जउधम्मउ लब्भइ ॥ ६ ॥

अर्थात्—(अप्पेअप्पहु भवउतरंडउ) औरआत्माको इस संसारसे तारनेवाले है (एरिसुचेयणभाव पयंडउ) वे परिणाम आर्जव धर्मसेही प्राप्त होते हैं (अज्जवेण वइरिउणखुब्भइ सोपुणअज्जउधम्मउ लब्भइ) और आर्जव धर्मके होनेसे शत्रुका मनभी क्षोभित हो जाता है भावार्थ सम्यग्दर्शन सम्यग्ज्ञान और सम्यक चरित्र आर्जव धर्मसेही प्राप्त होते हैं यही आर्जव धर्म संसारसे पार कर देनेवाला है और इस लोकमेंभी शत्रु आदिकसे बचानेवाला है ॥ ६ ॥

घता अज्जउपरमप्पउ गयसंकप्पउ विम्मितुजिसासउ अभओ।
तंणिरु झाइज्जइ संसउहिज्जइपाविज्जइजइअचलपओ ॥

अर्थात्—(अज्जउपरमप्पउ गयसंकप्पउ विमित्तजुसासउअभओ) अब निश्चय नयसे आर्जवका स्वरुप कहते हैं कि संकल्परहित नित्यऔर अभय स्वरुप जो परमात्मा है वही आर्जव है (तंणिरुझाइज्जइ संसउहिज्जइ) ऐसे परमात्माका संशय रहित ध्यान करना चाहिये (पाविज्जइजइ अचलपओ) इसीसे ध्यान करनेसे अचल पद

अर्थात् मोक्षकी प्राप्ति होती है ॥ ७ ॥ यहां विशेष ऐसा समझना चाहिये कि धर्मका श्रेष्ठ लक्षण आर्जव है आर्जव नाम सरलताका है मन वचन कायकी कुटिलताका दूर करना सो आर्जव नाम आत्माका स्वभाव (धर्म) है। आर्जव धर्म है सो पापोंके नाश करनेवाला है और सुख उत्पन्न करनेवाला है इस वास्ते कुटिलता छांडि कर्मोंके क्षय करने वाला आर्जव धर्मका धारण करो। कुटिलता है सो अशुभ कर्मोंका बंध करनेवाला है। जगतमें अति निंद्य है इस वास्ते आत्माके हित चाहने वाले पुरुषोंको इस पवित्र आर्जव धर्मका अवलंबन करना उचित है। जैसा आपके चित्तमें चिन्तवन करिये तैसाही अन्यको कहना अर तैसाही बाह्य काय करि प्रवर्तन करना सो सुखका उत्पन्न करनेवाला आर्जव धर्म है। हे भव्य जीवो ! माया चार रूप शल्य मनते निकालो उज्वल पवित्र आर्जव धर्मका वारम्बार विचार करो मायाचारी का व्रत तप संजम समस्त व्यर्थ है आर्जव धर्म निर्वाणके मार्गको सहाई है जहां कुटिल वचन नहीं बोले तहां आर्जव धर्म प्राप्त होय है। यह आर्जव धर्म है सो दर्शन ज्ञान चारित्रको अखंड स्वरूप है और अतिंद्रिय सुखका पिटारा है आर्जव धर्मके प्रभावकरि अतिन्द्रिय अविनाशी सुखको प्राप्त होय है संसाररूप समुद्रके तिरिवेको जहाजरूप आर्जवही है। जिस समय मायाचारी प्रगट होजाय उस समय चिरकालकी प्रीतिभी क्षण मात्रमें नष्ट होजाय है जैसै कांजीते दुग्ध फटि जाय है और मायाचारी अपने कपटको बहौत छिपावतेभी प्रगट हुवे विना नहीं रहै है। पर जीवनिकी चुगली करै वा दोष प्रकाशै ते आपही प्रगट हो जाय हैं मायाचार करना है सो अपनी प्रतीतिका विगाडना है धर्मका विगाडना मायाचारीके समस्त हितू जन विना कोई अपराध किये भी वैरी हो जाय है जो व्रती, त्यागी, तपस्वी होय और जाका एकवार भी कपट प्रगट हो जाय ताको समस्त लोक अधर्मी मान कोई भी प्रतीति नहीं करै कपटी पुरुषकी माता भी प्रतीति नहीं

करे कपटी तो मित्रद्रोही स्वामी द्रोही धर्म द्रोही कृतघ्नी है और यह जिनेन्द्र का धर्म छल कपट रहित है जैसे टेढे म्यानमें सीधा खड्ग प्रवेश नहीं करे तैसे कपट करि वक्र परिणामीका हृदयमें जिनेन्द्रका आर्जव कहिये सरल धर्म प्रवेश नहीं कर सके हैं। कपटी जीवका दोऊ लोक नष्ट हो जाय है इस वास्ते जो यश, धर्म प्रतीति चाहो हो तो मायाचार का त्याग कर आर्जव धर्म धारण करो कपट रहित जीवकी वैरी भी प्रशंसा करे है कपट रहित सरल चित्तजो अपराधभी किया होय तो दंड देने योग्य नहीं होय है आर्जव धर्मका धारकतो परमात्माका अपने अनुभवमें वारम्वार चिन्तवन करता है कषाय जीतनेका सन्तोष धारनेका संकल्प करे है जगतके छलनका दूरहीते त्याग करे है आत्माको असहाय चैतन्य मात्र जाने है जो धन सम्पदा कुटुम्वादिकनको अपनावे सोही कपट छलकर ठगाई करे इस वास्ते जो आत्माको संसार परिभ्रमणमें छुडाय परद्रव्यनिते भिन्न आपको असहाय जाने सो धन, जीवित व्यके अर्थ कपट कदा चित नहीं करे इस लिये जो आत्माको संसार परिभ्रमणते छुडाया चाहो हो तो मायाचारको परिहार आर्जव धर्म धारण करो। इस प्रकार आर्जव धर्म वर्णन हुआ ॥ ३ ॥

अर्थ चतुर्थ सत्यधर्म वर्णन.



असत्यंसवर्था त्याज्यं दुष्ट वाक्यंच सर्वदा।
परानिन्दा न कर्तव्या भव्येनापिच सर्वदा ॥ १ ॥

अर्थात्—(भव्येन अपि) भव्य पुरुषको (सर्वदा असत्यं सर्वथा त्याज्यं) सदैव असत्यका सर्वथा त्याग करना चाहिये (चदुष्ट

वाक्यंसर्वदा परनिन्दान कर्तव्या) और गाली गलौज आदि दुष्ट वचनोंका सर्वथा त्याग करना चाहिये ।

दय धम्मह कारण दोस णिवारण इह भव परभव सुक्खयरु ।
सच्चुजिवयणुल्लउ भवणिअतुल्लउ बोलिज्जइ विसयास धरु ॥२॥

अर्थात—(दय धम्मह कारण) सत्य वचन दया धर्मका मूल कारण है (दोसणिवारइ) समस्त दोषोंका दूर करनेवाला है (इयभव परभव सुक्खयरु) इस भव तथा परभवमें सुख देनेवाला है ।

(सच्चुजिवयणुल्लउ) वचनोंमें उत्कृष्ट वचन सत्य वचनही है ।

(भवण अतुल्लउ) सत्य वचन संसारमें निरुप मेय है ॥

अर्थात—सत्यवचनकी तुलना किसीके भी साथ नहीं कर सके बोलिज्जइ विसयास धरु तथा विश्वासके स्थान भूत ऐसे सत्य वचन सदा बोलने चाहिये ॥ २ ॥

सच्चुजिसव्वहधम्मह पहाण, सच्चुजिमहियि लिगरओ विहाण ।
सच्चुजि संसार समुद्दसेउ । सच्चुजि सव्वह मणसुक्खहेउ ॥ ३ ॥

अर्थात्—(सच्चुजिसवह धम्मह पहाण) सत्य धर्मही समस्त धर्मोंमें प्रधान धर्म है (सच्चुजिमाहियालि गरओविहाण) इस भूमंडलमें सत्य धर्मका विधानही उत्कृष्ट कहा है (सच्चुजि संसार समुद्दसेउ) सत्य धर्मही संसार समुद्रसे पार होनेके लिये पुल है अर्थात् संसारसे पार करनेका कारण है (सच्चुजिसवह मणु सुक्खहेउ) और सत्य धर्मही समस्त जीवोंके चित्तको सुख देनेवाला है ॥ ३ ॥

सच्चेण जिसोहइ मणुवजम्म । सच्चेण पवितउ पुण्ण कम्मे ।
सच्चेण सयलगुणगण महंत । सच्चेणतियस सेवा वहन्ति ॥ ४ ॥
सच्चेण अणुव्वय महवयाइ । सच्चेण विणासइ आवयाइ ॥ ५ ॥

अर्थात (सच्चेण जिसोहइ मणुवजम्म) यह मनुष्य जन्म सत्यसे ही शोभायमान होता है (सच्चेणपवितउ पुण्याकम्म) और सत्यसे ही पवित्र पुण्य कर्मोंका संचय होता है । (सच्चेण सयल गुणगण महन्ति इस सत्य धर्मसे अन्यसमस्त गुणोंका समूह पूज्या जाता है अर्थात सत्य धर्मके होनेसे अन्यगुणोकी महिमा बढती है (सच्चेणातियस सेवा वहन्ति) और इस सत्य धर्मसे ही स्वर्ग निवासी देव गण मनुष्योंकी सेवा करते हैं (सचेण अणुवय महवयाइ) इस सत्य धर्मके होते हुये अनुव्रत और महाव्रत पालन हो सक्ते हैं (सच्चेण विणासइ आवयाइ) और सत्यधर्मसे ही समस्त आपत्तियां नाश हो जाती हैं ४॥५॥

हियमिय भासिज्जइ णिच्चभासि । णविभासिज्जइ पर दुहपयासि ॥
परबाहायर भासहुम भव्व । सच्चुजि तंछंडहु विगइगव्व ॥६॥

अर्थात अब व्यवहार सत्य धर्मका स्वरुप कहते है कि, भोभव्य जीवो ? (हियमिय भासिज्जइणिच्चभास) सदा हितरुप और परिमित बचन कहो (णविभासिज्जइपर दुहपयासि) दूसरेको दुःख पहुंचाने वाले वचन कभीमत कहो (परवाहायर भासहुमभव्व) और न दूसरेको किसीतरहकी बाधा करने वाले बचन कहो (सच्चुजितं छंड उविगयगव्व) गर्व रहित उपर्युक्त वचनोका त्याग करो यही सत्य धर्म है ।

सच्चुजिपरमप्पउ अत्थिइक्क । सोभावउभवतम दलणअक्क ।
रुंधिज्जइमणवय कायगुति । जंखणिफिट्टइ संसार अति ।
अर्थात (सच्चुजिपरमप्पउ अत्थिइक्क । सोभावउंभवतम दलणअक्क)

सन्सारकृप अन्धकारको नाश करनेके लिये सूर्य्यके समान जो एक पर-मात्मा है वही सत्य धर्म है असा चिंतवन करो (कंधिज्जइ मणवयका-यगुत्ति) और मन वचन कायकी क्रियाका रोकना अर्थात मनोगुप्ति वचन गुप्ति कायगुप्तिका पालन करना भी सत्य धर्म है [जंखणकिट्टइ संसार अति] क्योंकि यह गुप्तिरुपधर्म जिस क्षणमें होता है इसी समयमें संसारके समस्त दुख दूर हो जाते हैं। यह निश्चय सत्यका स्वरूप जानना ॥ ७ ॥

घत्ता—सच्चुजिधम्मफलेण, केवलणाण लहइजणु।

तंपालहुभो भव्व मणहुम अयलियउइ हुवयणु ॥ ८ ॥

अर्थात (सच्चुजिधम्मफलेण—केवलणाण लहइजणु) भो भव्य इस सत्य धर्मके फलसे मनुष्योंको केवल ज्ञानकी प्राप्ति होती है। (तंपाल-हुभो भव्व मणहुम अयलियउइ वयणु) इस लिये इस सत्य धर्मका पालन करना चाहिये और मिथ्यावचन कभी नही बोलना चाहिये ॥ ८ ॥

यहां विशेष ऐसा है कि यह सत्य वचन है सोही धर्म है यह सत्य धर्म दया धर्मका मूल कारण है अनेक दोषोंका दूर करनेवाला है इस भवमें तथा परभवमें सुखका करनेवाला है सब जीवोंके विश्वास करनेका कारण है समस्त धर्मके मध्य सत्य वचन प्रधान है सत्य है सो संसार समुद्रके पार उतारनेको जहाज है समस्त विधानमें सत्य है सो बडा विधान है समस्त सुखका कारण सत्यही है सत्यवचनसेही मनुष्य-जन्म शोभायमाण होय है सत्यकरकेही समस्त पुण्य कर्म उज्जल होय जो पुण्यके ऊंचे कार्य्य किये जाते हैं तिनको उज्जलता सत्य विना नहीं होती है सत्य करि समस्त गुणोंका समूह महिमाको प्राप्त होता है सत्यके प्रभाव करिदेव भी सेवा करते हैं सत्य करकेही अणुव्रत महाव्रत होते हैं सत्य विना व्रत संजम नष्ट हो जाते हैं सत्य करि समस्त आपदाओंका नाश होता है इस वास्ते जो वचन बोलो सो अपना परका हित रुप कहो प्रमाणीक कहो किसीके दुख उपजे ऐसा वचन मत कहो परजीवोंको दुख उत्पन्न करनेवाला सत्य वचन भी

मत बोलो गर्वरहित कहो, परमात्माके अस्तित्व कहनेवाला वचन कहो नास्तिकोंके वचन पाप पुण्य स्वर्ग नरकका अभाव कहनेवाला वचन मत कहो यहां ऐसा परमागमका उपदेश जानना चाहिये—यह जीव अनंतानंतकाल तौनिगोदमेंही रहा तहां वचन रूपकर्म वर्गणाही ग्रहण नहीं करी क्योंकि पृथ्वी काय, अपकाय, तेजकाय, वायु काय वनस्पतिकाय इनके मध्य असंख्यात काल अनंतकाल रहा तहां जीभ इन्द्रियही नहीं पाई तहां बोलनेकी शक्तिही नहीं पाई अर जो विकल चतुष्कमें उपजा तथा पञ्चेन्द्रियतिर्यञ्चनमें उपज्या तहां जिव्हा इन्द्रिय-पाई तौभी अक्षर स्वरुप शब्द उच्चारण करनेका सामर्थ नहीं हुआ एक मनुष्य पनामें वचन बोलने की शक्ति प्रगट होय। है। ऐसे दुर्लभ वचनको असत्य बोलि बिगाड देना सो बडा अनर्थ है मनुष्य जन्मकी महिमा तो एक वचनहीसे है नेत्र, कर्ण, नाशिका, जिव्हा तो ढोरतिर्यञ्च केभी होते हैं खाना, पीना, काम भोगादिक पुण्य पापके अनुकूल ढोरोंकोभी प्राप्त होते हैं आभरण वस्त्रादिक कूकरा वानर गधा घोडा ऊंट बलध इत्यादिकनको भी मिलते हैं परन्तु वचन कहने की शक्ति श्रवण करने की शक्ती तथा उत्तर देनेकी शक्ति तथा पढने पढानेका कारण वचन तो मनुष्य जन्ममें ही है अर मनुष्य जन्म पाय भी जिसने वचन बिगाड दिया उसने समस्त जन्म बिगाड दिया। बहुरि मनुष्य जन्ममें जो लेना देना कहना सुनना धोज प्रतीत धर्म कर्म प्रीति-वैर इत्यादि जो प्रवृतिरुप और निवृतरुप कार्य्य हैं वे सब वचनके आधीन हैं अर जिसने वचनकोंही दूषित कर दिया उसने मनुष्य जन्मका समस्त व्यवहार बिगाड दूषित कर दिया इस वास्ते प्राण जातेभी वचनको दूषित मत करो। बहुरि जिन शासनमें कहा जो चार प्रकारका असत्य वचन ताका त्याग करो जो विद्यमान अर्थका निषेध करना सो प्रथम असत्य है जैसे कर्म भूमिका मनुष्य तिर्यंचका अकाल मृत्यु नहीं होय ऐसा वचन असत्य है क्योंकि देव नारकी तथा भोग भूमिका मनुष्य तिर्यंचका तो आयुकी स्थिति बांधी उतनी भोग करही मरण करे है अर कर्म भूमिका मनुष्यतिर्यंच निका आयु है सो विषके भक्षण करि तथा ताडन मारन छेदन भेदन बंधनादि वेदना करि

तथा रोगकी तीव्र वेदना करि तथा देहमें रुधिरका नाश होने करि तथा मनुष्य तिर्यञ्च तथा भयंकारि देव करि उत्पन्न किया भय करि तथा बिजली पडने और स्वचक्र तथापर चक्र आदिके भय करि तथा शस्त्रका घात करि पर्वतादिकन ते पतन करि अति पवन जल, कलह, विसम्वादादिकते उपज्या क्लेश करि तथा धूमादिक करि स्वासोच्छासका रुकने करि तथा आहारपानादिक करि आयुका नाश होय है । आयुकी दीर्घस्थितिहू विष भक्षण, रक्तक्षय, भय शस्त्रघात, संक्लेश, स्वासोस्वासका निरोध करि अन्नपानका अभाव करि तत्काल नाशको प्राप्त होयही है । कितनेही लोग कहे हैं कि आयुपुर्ण हुए विना मर्ण नहीं होय तिन्का उत्तर करे हैं जो बाह्य निमितसे आयु नहीं । छिदे तो विष भक्षण तें कोन परान्मुख होता अर विष खानेवालेको उगाल काहेको कराते अर शस्त्रघात करनेवाले ते भय करि काहेको भागते अर सर्प सिंह व्याघ्र हस्थी तथा दुष्ट मनुष्य तिर्यञ्चादिकनको दूरहीते काहेको छोडते और नदी समुद्र कूप बावडीमें तथा अग्निकी ज्वालामें पडनेतें कोन भय करता अर रोगका इलाज क्यों करते इसवास्ते बहुत कहने करि कहा जो आयुघात होनेका बाह्य कारण मिल जाय तो आयुका घात होयही जाय यह निश्चय है । बहुरि आयुकर्मके समान और कर्म भी बाह्य कारण मिलनेसे उदयमें आवेही हैं समस्त जीवोंके पुण्यपाप कर्म सत्तामें विद्यमान है बाह्य द्रव्य क्षेत्र कालभावादि पूर्ण सामिग्री मिले कर्म अपना रस देतेही हैं बाह्य निमित्त नही मिले तो उदयमें नहीं आवे तथा रस विनादियेही निर्जरे हैं । बहुरि जो असद्भूतको प्रगट करना सो दूसरा असत्य है जैसे देवनिके अकाल मृत्यु कहना देवनिके भोजन ग्रासादि रूप कहना कहैं वा देवनको मांस भक्षी कहना तथा मनुष्यनीके साथ देवोंका काम सेवन तथा देवांगनाके साथ मनुष्यनिका काम सेवन इत्यादि कहना सो दूसरा असत्य है । बहुरि वस्तुके स्वरुपको अन्य विपरीत स्वरुप कहना सो तीसरा असत्य है । गर्हित वचनका तीन भेद हैं गर्हित, सावद्य, अप्रिय, तिनमें पैशून्य हास्य कर्कस, असमंजस, प्रलपित इत्यादि और भीसूत्र विरुद्ध वचन सोगर्हित वचन है । तिनमें जो परके विद्यामान तथा अविद्यमान दोषोंको पीठ, पीछे

कहना तथा परके धनका विनाश जीविकाका प्राणनिका नाश जिस बचनतें होजाय तथा जगतमें निंद्य होजाय अपवाद होजाय ऐसा वचन कहना सोगार्हित नाम असत्य वचन है। बहुरि हास्य लिया भंड वचन तथा सुननेवालेनिके पापमें प्रीति उपजावनेवाले वचन सोहास्य नाम गर्हित वचन है। तथा दूसरेसे कहे कि तू ढीट है मूर्ख है अज्ञानी है इत्यादि कर्कस वचन है। तथा देश कालके योग्य नहीं जिससे आपके तथा अन्यके महा दुख उपजे सो असमंजस वचन है। तथा विनाप्रयोजन धीठ पनातें वकवाद करना सो प्रलपित वचन है तथा जिस बचन करि जीवका घात होजाय देश लुट जाय देशमें अनेक प्रकार उपद्रव होजाय तथा देशका स्वामीके महा वैर उत्पन्न होजाय तथा ग्राममें घरमें अग्नि लग जाय घर बल जाय वनमें अग्नि लग जाय तथा कलह विसम्वाद युद्ध प्रगट होजाय तथा विषादिक करि मरिजाय तथा वैर बंध जाय तथाछः कायके जीवनिके घातका आरम्भ होजाय महाहिंसामें प्रवृति होजाय सोसावद्य वचन है तथा परको चोर कहना व्यभिचारी कहना सोसमस्त सावद्य वचन दुर्गतिके कारण त्यागने योग्य हैं। अब अप्रिय बचन त्यागने योग्य प्राण जाते भी नहीं कहना अप्रिय वचनके भेद ऐसे जनाना—कर्कशा, कुटुका, परुषा, निष्ठुरा, परकोपिनी, मध्यकृशा, अभिमानिनी, अनयंकरी, छेदंकरी भूत वध करी ये महापापके करनेवाली महानिंद्य दश भाषायें सत्यवादी त्याग करे है। तू मूर्ख है वलध है ढोर है रे मूर्ख तू क्या समझ सक्ता है ये कर्कशा भाषा है तू कुजाति है नीच जाति अधर्मी महा पापी है तू स्पर्शने योग्य नहीं तेरा मुख देखे वडा अनर्थ है इत्यादि उद्वेग करनेवाली कटु भाषा है। तू आचार भ्रष्ट भ्रष्टाचारी है महा दुष्ट है इत्यादि मर्म छेदनेवाली परुषा भाषा है। तूझे मार डालूंगा तेरा नाक काट डालूंगा मस्तक काट डालूंगा तुझे खाजाऊंगा इत्यादि निष्ठुरा भाषा है। रेनिर्लज्ज वर्ण शंकर तेरा जातिकुल आचारका ठिकाना नहीं तेरा कहा तप तूकुशील हंसने योग्य है महा निन्द्य अभक्ष भक्षण करनेवाला है तेरा नाम लिया कुल लज्जित होय है इत्यादिक परकोपिनी भाषा है। तथा जिस बचनके सुननेसे हाडनिकोशालि नष्ट

होजाय सामर्थ्य नष्ट होजाय सो मध्य कृशा भाषा है, तथा लोगोंमें अपना गुण प्रगट करना परके दोष कहना अपना कुलजाति रूपबल विज्ञानादिक मद लिये जो वचन बोलना सो अभिमानना भाषा है। बहुरिशील खंडन करनेवाली अर विद्वेश करनेवाली अनयकरी भाषा है। तथा जो वीर्य्यशील गुणादिकनके निर्मूल करने वाली असत्य दोष प्रगट करनेवाली जगतमें झूंठा कलंक प्रगट करनेवाली छेदंकरी भाषा है। जिस वचन करि अशुभ वेदना प्रगट हो जाय अथवा प्राणोंका नाश करनेवाली भूत वधकरी भाषा है। ये दश प्रकार निंद्य वचन त्यागने योग्य हैं तथा स्त्रीनके हाव भाव विलास विभ्रम रूप क्रीडा व्यभिचारादिकनकी कथा कामके जगानेवाली ब्रह्मचर्य्यका नाश करनेवाली स्त्रीनकी कथा तथा भोजन पानमें राग करानेवाली भोजनकी कथा तथा मिथ्या दृष्टी कुलंगीनकी कथा तथा धन उपार्जन करनेकी कथा तथा वैरी दुष्टनिके तिरस्कार करनेकी कथा तथा हिंसाको पुष्ठ करनेवाले वेद स्मृति पुराणादिक कुशास्त्रनिकी कथा कहने योग्य नहीं सुनने योग्य नहीं पाप बंधके करनेवाली अप्रिय भाषा त्यागने योग्य है। हे ज्ञानी पुरुषों! ये चार प्रकारकी निंद्य भाषा हास्यकरि क्रोध करि लोभ करि मद करि भय करि द्वेश करि कदाचित मत कहो अपना परका हित रूपही वचन बोलो इस जीवके जैसा सुख हित रूप, अर्थ संयुक्त मिष्ट वचन करे है निराकुल करे है आताप हरे है तैसा सुखकारी आताप हरनेवाला चन्द्रक्रांतिमणी जल चंदन मुक्ताफलादिक कोई भी पदार्थ नहीं है और जहां अपने ते धर्मकी रक्षा होती होय जीवोंका उपकार होता होय तहां विना पुछे भी बोलना अर जहां आपका तथा अन्यका हित नहीं होय तहां मौन सहितही रहना उचित है। तथा सत्य वचन बोलने तें सर्व विद्या सिद्ध होय हैं। जहां विद्या देनेवाला सत्य वादी होय तथा सीखनेवाला भी सत्यवादी होय तिसके समस्त विद्यायें सिद्ध होती हैं अनन्त कर्मोंकी निर्जरा होय है सत्यके प्रभावतें अग्निजल विषसिंह सर्प दुष्ट देव मनुष्यादिक बाधा नहीं कर सक्ते हैं। सत्यके प्रभावते देव भी वश हो जाते हैं प्रीति प्रतीति दृढ़ होय है सत्यवादी माता समान विश्वास करने योग्य होय है गुरुकी ज्यों पूज्य होय है

मित्रके समान प्रिय होय है उज्वल यशको प्राप्त होता है तपसंयमादि समस्त सत्य वचनतें शोभाको प्राप्त होते है जैसे विष मिलनेसे मिष्ट भोजन का नाश होय है अन्याय करि धर्मको यशका नाश होय तैसे असत्य वचनितें अहिंसादि समस्त गुणोंका नाश होय है तथा असत्य वचनतें अप्रतीति अकीर्ति अपवाद अपने वा अन्यके संक्लेश, अरति, कलह, वैर, भय, शोक, बध, बंधन, मरण, जिव्हा छेद, सर्वस्व हरण, बंदी ग्रहमें प्रवेश, दुर्ध्यान, अपमृत्यु, व्रत, तपशील संजमका नाश नरकादि दुर्गतिमें गमन भगवानकी आज्ञाको भंग परमागमते परान्मुखता घोर पापका आश्रव इत्यादि हजारों दोष प्रगट होते हैं। इस वास्ते हे ज्ञानी जनहो ? लोकमें प्रिय हित मधुर वचन बहौत भऱ्या है सुंदर शब्दोंकी कमी नहीं फिर निंद्य वचन क्यों बोलते हो ? रे-तू इत्यादिक नीच पुरुषोंके बोलनेके वचन प्राण जाते भी मत कहो अधमपना उत्तम पना तौ वचनहीतें जान्या जाय है नीच पुरुषोंके बोलनेके निंद्य वचनको छोड़ि प्रिय हित मधुर पथ्य धर्म सहित वचन कहो जो अन्यको दुःखदेने वाला वचन कहै हैं तथा झूंठा कलंक लगावे है तिनके पापतें इहांहीं बुद्धि भ्रष्ट होय है। जीभ गल जाय है तालवा फटि जाय है। आंधा हो जाय पग नष्ट होजाय दुर्ध्यानतें मरि नर्कतिर्यंचादि कुगतिका पात्र होय है अर सत्यके प्रभावतें यहां उज्वल यश वचनकी सिद्धी द्वादशांगादि श्रुतका ज्ञान पायकरि फिर इन्द्रादिक महर्द्धिक देव होय तीर्थकरादि उत्तम पद पाय निर्वाण जाय है इस वास्ते उत्तम सत्य धर्महीको धारण करो इस प्रकार सत्य धर्मका वर्णन किया ॥ ४ ॥

अथ पंचम शौच धर्म वर्णन. (५)

वाह्यमाभ्यन्तरंचापि मनो वाकाय शुद्धिभिः ॥
शुचितेन सदा भाव्यं पापभीतैः सुश्रावकैः ॥ १ ॥

अर्थात—(पापभीतैः सुश्रावकैः) जो महा श्रावक पापसे भयभीत हैं। उनको (मनो वाकाय शुद्धिभीः) मन वचन कायकी शुद्धता पूर्वक (वाह्यमाभ्यन्तरंचापि) वाह्य शरीरादि और आभ्यन्तर आत्माको

(सदा शुचितेन भाव्यं) सदा उज्वल रखना चाहिये यही शौच धर्म है ॥ १ ॥

सउचजिधम्मंगउ तंजिअमंगउ भिण्णंगउ उव उगमओ ॥
जरमरण विणासणु तिजगपयासणु झाइज्जइ अहिणिसिजि धुओ २

अर्थात—(सउचजिधम्मंगउ तंजिअमंगउ) यह शौच धर्म अभंग धर्मका एक अंग है (भिण्णंगउ) शरीरसे भिन्न है अर्थात यह शौच शरीरादिक के स्नानसे भिन्न रुप है (उव उगमओ) यह शौच धर्म ज्ञान दर्शन रुप उपयोग स्वरुप है (जरमरणविणासणु) जन्मजरामरणादिकका नाश करनेवाला है (तिजगपयासणु) और तीनो जगतका प्रकाश करनेवाला है (झाइज्जइ अहणिसिनिधुओ) इसलिये इस धर्मका निश्चय रुपसे अहर्निसध्यान करना चाहिये २

धम्मसउच्च होई मणसुद्धई । धम्म सउच्च वयण घण गिद्धइ ॥
धम्म सउच्च लोहु वज्जंतउ । धम्म सउच्च सुतवयहिंजंतउं ॥ ३ ॥

अर्थात्—(धम्मसउच्च होई मण सुद्धई) मनको अत्यंत शुद्ध रखनेसे यह उत्तम शौच धर्म होता है । (धम्मसउच्च वयण घण गिद्धइ) और यही शौच धर्म शास्त्र रूपी धनकी अत्यंत गृद्धता करनेसे होता । अर्थात शास्त्र ज्ञानकी वृद्धि होनेसेही शौच धर्मका पालन होता है (धम्मसउच्च लोहुवज्जंतउ) यह शौच धर्म उसी मनुष्यके होता है जिसने लोभ कषायका त्याग कर दिया है (धम्म संउच्चसुतवयहि जंतउ) जो श्रेष्ट तप करनेके मार्गमें जा रहा है उसके यह शौच धर्म होता है ॥ ३ ॥

धम्मसउच्च वंभव यधारणु । धम्मसउच्च मयट्टणिवारणु ॥
धम्मसउच्च जिणायम भणणे । धम्मसउच्च सुगुण अणुमणणे ॥४

अर्थात—(धम्मसउच्चवं भवयधारण) ब्रह्मचर्य व्रतका धारण करनाहै शौच धर्म है (धम्मसउच्च मयट्ठनिवारण) और ज्ञान, पूजा,

कुल, जाति, वल, रिद्धि तप, और शरीरका मद निवारण करना अर्थात इन आठों मदोंका न करनाही शौच धर्म है। (धम्मसउच्च जिणायम भणणे) जैन शास्त्रोंके पठन पाठन करनेसे शौच धर्मका पालन होता है। (धम्मसउच्च सुगुण अणुमणणे) और उत्तम उत्तम गुणोंके मनन करने व विचार करनेसे शौच धर्म होता है ॥ ४ ॥

धम्मसउच्चसल्ल कयचाये। धम्मस उच्चसुणिम्मलभाये ॥
धम्मसउच्च कषाय अहावे। धम्मसउच्चण लिप्पइं पावे ॥५॥

अर्थात —(धम्मस उच्चस ल्लकयचाये) माया मिथ्या निदान इन तीनों शल्योंके त्याग करनेसे शौच धर्म है। (धम्मस उच्चसुणिम्मल माये) तथा आत्माके निर्मल परिणाम होनेसे शौच धर्म है। (धम्मस उच्चस कपाय अहावे) क्रोध, मान, माया, लोभ इन चारों कपायोंके अभाव होनेसे शौच धर्म होता है। (धम्मस उच्चण लिप्पईपावे) तथा पाप रुप यंकसे लिप्त न होनाही शौच धर्म है ॥ ५ ॥

अहवाजिणवरपुज्ज विहाणे, णिम्मलफासुयजलकयण्हाने
तंपिसउच्च गिहच्छहमासिउ, णाविमुणिवरह कहिविलोयासिउ ६

अर्थात्—अब निश्चय शौचका कथन करके आचार्य लौकिक शौचकहते हैं (अहवा जिनवरपुज्यविहाणे) अथवाजिनेन्द्र देवके पुजादिक विधानोंमें (णिम्मफालफासुयजलकयण्हाणे) निर्मल प्रासुकजलसे जो स्नान करना है (तंपितउच्चगिहच्छहमासिउ) वहभी ग्रहस्थोंके लिये शौच धर्मक हा है (णाविमुणिवरहकहिवलोयासिउ) लोकमें प्रचलित् स्नानादिक शौच गृहस्थोंकेही लिये है मुनियोंके लिये नहीं है ॥ ६ ॥

भउमुणिविअणिच्चु धम्म सउच्च पालिज्जइ एयग्गमणि
सुहमग्गसहायउ सिवपयदायउ अण्णमिचिंतइ किंपिरवणि

अर्थात (भउमुणिवि अणिच्चु) इस संसारको अनित्य जान कर (धम्मसउच्च पालिज्जई एयग्गमाणि) एकाग्र मनसे इस शौच धर्मका पालन करो (सुहमग्गसहायउ) यह शौच धर्म शुभमार्गका सहाय करने वाला

है (सिवपथदायन) और मोक्षका देने वाला है (अण्णमचिंतइंकिणि-खाणि) इसलिये इसको छोडकर अन्य किसीका क्षण भरभी चिन्तवन मत करो । इसीका चिन्तवन अहर्निशि करना चाहिये ॥ ७ ॥

यहां विशेष इतना समझना चाहिये कि शौच नाम पवित्रता तथा उज्वलताका है जो वहिरात्मा देहकी उज्वलता स्नानादि करनेको शौच कहे हैं सोसप्तधातुमय मलमूत्रका भस्या ऐसा जो यह शरीर सो जलसे धोमे करि शुचिपनाको प्राप्त नहीं होय है जैसे मलका बनाया मलका भस्या घट जलसे शुद्ध नहीं होता है तैसे शरीरभी उज्वल जलसे शुद्ध नही होय शुचिमानना वृथा है तथा शौचधर्मतो आत्माकोउज्वलकरनेसे होता है आत्मा लोभ करि हिंसाकर अत्यन्त मलिन हो रहा है सो आत्मा लोभ मलके दूर होनेसे पवित्र होता है जो अपने आत्माको देहसे भिन्न ज्ञानोपयोग दर्शनोपयोगमय अखंड अविनाशी जन्मजरामरण रहित तीन लोक वर्तिसमस्त पदार्थोंनिका प्रकाशक इत्यादि गुण न युक्त सदा-काल अनुभव करे है ध्यावे है उसके शौच धर्म होय है । तथा मनको मायाचार लोभादिक रहित उज्वल करना ताके शौच धर्म होय है जिसकामन काम लोभादिक करि मलिन होय तिस पुरुषके शौच धर्म नहीं होय है तथा धनकी लंपटता जो अति गृद्धिता तिसके त्यागसे शौच धर्म होय है तथा परिग्रहकी ममताको छोडि इन्द्रियनिके विषय-निका त्याग करि तपश्चरणके मार्गमें प्रवर्तन करना सो शौच धर्म है तथा ब्रह्मचर्य धारण करना सो शौच धर्म है । तथा अष्टमद कर रहित विनयवानपना सो शौच धर्म है अभिमानी मद सहित होय सो महामलिन है ताकै शौच धर्म कैसे होय । तथा वीतराग सर्वज्ञका परमागमका अनुभव करने कर अन्तर्गत मिथ्यात्व कषायादिक मलका धोवना सो शौचधर्म है । उत्तमगुणोंकी अनुमोदना करि शौचधर्म होय है । परिणामोंमें उत्तम पुरुषोंके गुणोंका चिन्तवन करि आत्मा उज्वल होय है कषाय मलका अभाव करि उत्तम शौचधर्म होय है । आत्माको पाप करि लिप्त नहीं होने देना सो शौचधर्म है जो समभाव सन्तोष भाव रूप जल करि तीव्र लोभके पुंजको धोवे है तथा भोजनमें अति

लम्पटता रहित है उसके निर्मल शौचधर्म होय है क्योंकि भोजनका लम्पटी अति अधम है अखाद्य वस्तुको भी खाय है हीनाचारी होय है भोजनका अति लम्पटीके लज्जा नष्ट हो जाती है क्योंकि संसारमें जिव्हा इन्द्रिय अर उपस्थ इन्द्रियके वशीभूत हुवे जीव आपाभूलि नर्क तिर्यञ्च गतिके कारण महानिंद्य परिणामनिकों प्राप्त होय हैं। संसारमें पर धनकी वाञ्छा परस्त्रीकी वञ्छा परभोजनकी अति लम्पटता ही परिणामोंको मलिन करने वाली है इनकी वांछातें रहित होय अपने आत्माकी संसार पतनते रक्षा करो। आत्माकी मलीनतातो जीव हिंसासे अरपरधन परस्त्रीकी वाञ्छासे है जो परस्त्री परधनके इच्छक अरजीव घातके करने वाले हैं वे कोटि तीर्थनमें स्नान करो समस्त तीर्थंकी वंदना करो तथा कोटि दान करो कोटि वर्ष तप करो समस्त शास्त्रोंका पठन पाठन करो तो भी उनके शुद्धता कदाचित नहीं होय। अभक्ष्य भक्षण करने वालोंका अर अन्यायके विषय तथा धनके भोगने वालोंके परिणाम ऐसे मलिन होय है जो कोटि बार धर्मका उपदेश अरसमस्त सिद्धान्तोंकी शिक्षा बहोत वर्ष श्रवण करते भी कदाचित भी हृदयमें प्रवेश नहीं करे है सो प्रत्यक्ष देखिये हैं जिनको पचास पचास वर्ष शास्त्र श्रवण करते व्यतीत हो गये तो भी धर्मके स्वरूपका ज्ञान जिनको नहीं है सो समस्त अन्याय धन अर अभक्ष्य भक्षणका फल है इस वास्ते जो अपने आत्माका शौच चाहो हो तो अन्यायका धन ग्रहण मति करो अभक्ष्य भक्षण मत करो परस्त्रीकी अभिलाषा मत करो। तथा परमात्माके ध्यानसे शौच है अहिंसा सत्य अचौर्य ब्रह्मचर्य परि ग्रहके त्यागसे शौच धर्म है। जो पंच पापोंमें प्रवर्तन करने वाले हैं ते सदा काल मलीन हैं जो परके उप कारको लोपे हैं वे कृतघ्नी महा मलीन हैं जो गुरुद्रोही स्वामीद्रोही मित्रद्रोही उपकारको लोपने वाले हैं तिन कै पापका सन्तान असंख्यात मत्रोंमें कोटि तिर्थोंमे स्नानकरि दानकरि दूर नही होय है विश्वासघाती सदा मलिन है इस वास्ते भगवानके परमागमकी आज्ञा प्रमाण शुद्ध सम्यग्दर्शन ज्ञान चारित्रकरि आत्माकों शुचिकरो क्रोधादिकषायका निग्रहकरि

उत्तमक्षमा दिगुणधारणकर आत्माको उज्जल करो समस्तव्यवहार कपट-रहित उज्जल करो परका विभव ऐश्वर्य्य उज्जलयश उत्तमविद्यादि प्रभावदेखि अदेखिसका भावरूप मलीनता छोडि शौचधर्म अंगीकार करो दूसरेके पुण्यका उदय देखि विषादीमत होउ इस मनुष्य पर्य्यायके तथा इन्द्रियबल ज्ञान आयु सम्पदादिकोंको अनित्य क्षणभंगुरजान एकाग्रचित्तकरि अपने स्वरूप में दृष्टिधार अशुभ भावनिका अभावकरि आत्माको शुचि करो। शौचही मोक्षका मार्ग है शौचही मोक्षका दाता है। इसप्रकार शौचनामा पञ्चम धर्मका वर्णन किया ॥ ५ ॥

अथ षष्ठम संयम धर्म वर्णन ६.

संयमं द्विविधंलोके कथितं मुनिपुंगवैः
पालनीयं पुनश्चित्ते भव्यजीवेन सर्वदा १.

अर्थात्—(मुनिपुंगवै) मुनियोंमें श्रेष्ट ऐसेगणधरादिक देवोंनें (लोके संयमंद्विविधं कथितं) लोकमें संयम दो प्रकार एक बाह्यसंयम दूसरा आभ्यन्तर संयम कहा है (भव्य जीवेन सर्वदा पुनश्चित्ते पालनीयं) सोभव्यजीवोंको अपने चितमें दोनो प्रकार का संजम पालन करना चाहिये ॥ १ ॥

संजमुजणि दुल्लहु तंपाविल्लहु जोछंडइ पुणमूढ मई
सोभमइ भवावलि जरमरणावलि किं पावेसइ पुणसुगई॥२॥

अर्थात्—(संजम जाणि दुल्लह) इस संसारमें संयम का प्राप्त होना अत्यन्त दुर्लभ है (तंपाविल्लहु जोछंडहि पुण मूढमई) इसलिये इस संजमको पाकर जो छोड देता है वह महामूर्ख है (सोभमइ भवा-वलि जरमरणावलि) और वह जन्ममरण की संततिरूप संसार की अगणित परंपरा में चिरकाल तक परिभ्रमण करता है (किंपावेसइ पुण सुगई। और इस तरह संजम रहित संसारमें परिभ्रमण करते हुए को श्रेष्टगति फिर कैसे मिल सक्ती है ? कभी नहीं, इसलिये संयम को पाकर फिर नही छोडना चाहिये ॥ २ ॥

संजमु पञ्चेंदिय दंडणेण । संजमु जिकसाय विहंडणेण
संजमु तवदुद्धर धारणेण । संजमुरसचाय वियारणेण ॥३॥

अर्थात्—(संयमु पञ्चेंदिय दंडणेण) स्पर्शनरसन घ्राण चक्षु और श्रोत्र इन पांचो इन्द्रियों को वश करने से संजम होता है (संजमु जिकसाय विहंडणेण) कोधादिकपायों के खंडन करने अर्थात् नाश करनेसे संयम होता है (संजमु तव दुद्धरधारणेण) दुर्द्धर (जो कठिनता से धारण किया जाय) तपके धारण करनेसे (संयम रसचाइ वियारणेण) और तिक्त, कटु, कपाय, मंधुर आदि करसोंके त्याग करनेसे उत्तम संयम धर्म प्राप्त होता है ॥ ३ ॥

संयमु मणपसरहथंभणेण । संयमुगुरु कायकिलेसणेण
संयमुउववास विजंभणेण। संयमु मणुपरिगह चायएण ॥४॥

अर्थात्—(संयमु मण पसरइ थंभणेण) चंचल मनका प्रसार रोकनेसें संजम होता है (संयम गुरुकार्याकलेसणेण) अत्यन्त काया कलेश करनेसे संयम होता है (संयमुउववास विजंभणेण) उपावास वेला तेला आदि करनेसे संयम होता है (संयमु मणुपरिगह चायएण) और मनके परिग्रह अर्थात आभ्यन्तर परिग्रह के त्याग करनेसे संजम होता है ॥ ४ ॥

संयमु तसथावर रक्खणेण । संयमुसतत्थपरिक्खणेण
संजमु तणु जोयणियंतणेण । संजमु वहुगमण चयंतणेण ॥४॥

अर्थात्—(संयम तसथावर रक्खणेण) त्रस और स्थावरजीवो की रक्षा करनेस संयम होता है (संजमु सुतत्थपरिक्खणेण) सूत्रों के अर्थ की परीक्षा करनेसे अर्थात् पठन पाठन और विचचन करनेसे संयम होता है (संजमु तणुजोयाणियन्त णेण) काय योग के व्यापार का निरोध करनेसे संयम होता है (संजमु वहुगमण चयंतणेण) और अधिक गमन का त्याग अर्थात् थोडा परिमित गमन करनेसे मंसंजम होता है ॥ ५ ॥

संजमु अणु कंपकुणंत एण । संयमुपरमत्थवियारणेण
संयमुपोसइ दंसणहुपंथु । संजमुनिच्छय णरुमोक्खपंथु ॥६॥

अर्थात्—(संयमु अणुकंपकुणंतएण) अनुकम्पा अर्थात् दया करनेसे संयम होता है (संयमुपरमत्थवियारणेण) और परमार्थका विचार करनेसे संयम होता है (संयमुपोस हदंसण हुपंथ) यह संयम सम्यग्दर्शनके मार्ग को पुष्ट करता है संयमु निच्छयण रुमोक्खपंथ) और निश्चय नयसे मनुष्य के लिये मोक्ष का मार्ग संयम ही है ॥६॥

संयमु विणुणरभव सयलु सुण्ण । संयमु विणदुग्गइ जियउ पण्ण
संयमु विणघडियम इच्छजाउ । संयमु विणविहलिय अत्थि आउ ॥७॥

अर्थात्—(संयमु विणणरभवसयलसुण्ण) विना संयम के मनुष्य जन्म ही व्यर्थ है अर्थात् संजम धारण करणे के लिये इन्द्रादिक देव मनुष्य पर्यापानेकी इच्छा करते हैं इसलिये मनुष्य जन्म को पाकर जो संजम धारण नहीं किया तो उस का यह जन्म व्यर्थ ही गया (संयमु विणुदुग्गइ जियउपणण) इसी संजम के विना यह जीव सदा दुर्गति में उत्पन्न होता है इस लिये इस जीवको सदा ऐसा चिन्तवन करना चाहिये किसंयमु विनघडियम इच्छजाइ) विना संजम के मेरी एक घडी भी व्यर्थ न जावे क्योंकि (संयमविणविहुलिय अत्थि आउ) विना संयमके यह आयुभी निष्फल है ॥ ७ ॥

इहभवि परभविसंजमुसरणु हुज्जउ जिणणाहें भणियं
दुग्गइ सरसोसण खरकिरणोसण जेण भवारिविसमु हणिओ ॥८॥

अर्थात्—(जिणणाहेंभणियं) श्रीजिनेन्द्र देवने ऐसा कहा है (इहभवपरभव संजम सरणु) मनुष्य को इस भवतथापर भवमें संजम ही शरण है (दुग्गइ सरसोसणखरकिरणोसण) दुर्गतिरूप सरोवर के शोषण करने के लिये यह तीव्र सूर्य की किरण समान है (जेण भवारि

विसम हणिओ) संसार रूपी विषम शत्रु इसी संजम द्वारा नाश किया जाता है ॥ ८ ॥

यहां विशेष कहे हैं कि संयमका ऐसा लक्षण जानना जो अहिंसा कहिये हिंसा को त्याग दयारूप रहना हितमित पथ्य प्रिय सत्य वचन बोलना परके धनमें वाञ्छांका अभाव करना कुशीलका छोडना परिग्रहका त्याग करना ये पांच व्रत हैं सो इन पांच पापनिका एक देश त्याग सो अणुव्रत है सकल त्याग सो महाव्रत है इन पञ्च व्रतों को दृढ धारण करना अर पंच समिति का पालना तिनमें गमन की शुद्धता ईर्या समिति है वचन शुद्धता सो भाषा समिति है निर्दोष शुद्ध भोजन करना सो एषणा समिति है शरीर के उपकरणादि नेत्रनतें शोधि सोधि उठावना धरना सो आदान निक्षेपणा समिति है मलमूत्र कफादिक मल जहां अन्य जीवन को ग्लानि बाधादिक नहीं उपजे ऐसे क्षेत्रमें क्षेपणा सो प्रतिष्ठापना समिति है इन पंच समितियों का पालना अरक्रोध मानमायालोभ इनचार कषायों का निग्रह करना अर मन वचन कायकी अशुभ प्रवृति ये दंड है इन तीन दंडनि का त्याग करना अर विषय निमें दौडती पञ्च इन्द्रियों को वश करना जीतना सो संजम है। भावार्थ पंचव्रतों का धारण पंच समितिका पालन कषायनिका निग्रह दंडनिका त्याग इन्द्रियों के विजय को श्रीजिनेन्द्र के परमागम में संयम कहा है। सो संजम बहुत दुर्लभ है जिनके पूर्व के पापि अशुभ कर्मनिका अतिमंदपना होते मनुष्य जन्म उत्तम जाति इन्द्रिय परिपूर्णता निरोगता कषायोंकी मंदता होय अर उत्तम संगति अर जिनेन्द्र के आगमका सेवन अर सांचे गुरुओं का संयोग सम्यग्दर्शनादि अनेक दुर्लभ सामिग्री का संयोग होय तब संसार देह भोगनितें अति विरक्तता के धारक मनुष्य अप्रत्याख्यानावरणके क्षयोपशमतें तो देश संजम होय अर जिनके अप्रत्याख्यान और प्रत्याख्यान दोनो कषायोंका क्षयोपशम होय तिस पुरुषके सकल संजम होय इस कारण संजम पावना महान दुर्लभ है। नरकगति देवगति तिर्यञ्चगतिमें तो संयम होय नहीं किसी तिर्यञ्च के देशव्रत अपनी पर्याय माफिक कदाचित होय है और मनुष्य पर्यायमें भी नीच कुलादिकमें

अधम देशोंमें इन्द्रिय विकल अज्ञानी रोगी दरिद्री अन्यायमार्गी विषया ऽनुरागी तीव्र कषायी निंद्य कर्मी मिथ्या दृष्टियोंके संजम कदाचित नहीं होय हे इस वास्ते संजमका पाना अति दुर्लभ है ऐसे संयम को भीपाय कोई मूढ बुद्धी विषयन कालोलुपी होय छोडे है तो अनन्त काल जन्म मरण करता संसार परिभ्रमण करे है। संयम पायकर जो छोडे है बिगाडे है तिसके अनन्त काल निगोद में परिभ्रमण त्रसस्थ वरोंमें भ्रमण करना होय सुगति नहीं होय संयम पाय बिगाड़ने समान अन्य अनर्थ नहीं है विषयों कालोभी होय करि जो संयम को बिगाडे है सो एक कौडी में चिन्तामणि रत्नवेचे है तथा ईंधनके अर्थि कल्प वृक्षको छेदे है विषयोंका सुख हैं सो सुख नहीं सुखाभास है क्षण भंगुर है नरकों के घोर दुःखोंका कारण है किंपाकफल जैसे जीभका स्पर्श मात्र मीठा लगता है पीछे घोर दुःख महादाह सन्ताप देय मरण को प्राप्त करे हैं इसी प्रकार भोग कि च्छितमा त्रकालतो अज्ञानी जीवोंको भ्रमसे सुख सा भासे है फिर अनंत काल अनन्त भवोंमें घोर दुःखोंका भोगना है इस कारण संयम की परम रक्षा करो पांच इन्द्रियोंको विषयनिके संबंध तें रोकनेतें संयम होय है कषायों का खंडन करि संयम होय दुद्धरतपका धारण करि संमय होय है रसोंका त्यागकर संयम होय मनके प्रसर के रोकने करि संयम होय है महान काय क्लेशनिके सहने करि संयम होय है उपवासादि अनशन तपकरि संयम होय है मनमें परिग्रहकी लाल साका त्याग करि संयम होय है त्रसथावर जीवोंकी रक्षा करना सोही संयम है मनके विकल्पोंके रोकने करि तथा प्रमादतें वचन की प्रवृत्तिके रोकने करि संजम होय है। शरीरके अंगउपंगके प्रवर्तन को रोकने करि संयम होय है। बहुत गमन के रोकने करि संयम होय है। बहुरि दयारूप परिणाम करि संयम होता है परमार्थका विचार करके तथा परमात्मा का ध्यान करके संयम होय है संयम करके ही सम्यग्दर्शन पुष्ट होय है संयम ही मोक्ष का मार्ग है. संयम विना मनुष्य भवशून्य है गुणरहित है संयम विना यह जीव अनेक दुर्गतोंको प्राप्त हुआ है संयम विना देहका धारना बुद्धिका पावना ज्ञानका आराधन करना समस्त वृथा

है संयम विना दीक्षा धारना व्रत धारना मुंडमुंडावना नग्न रहना भष धारणा ये समस्त वृथा हैं क्योंकि संयम दोय प्रकार है इन्द्रिय सयम प्राण संयम जिसकी इन्द्रियां विषयोंसे नहीं रुकी अर जिसकें छ कायके जीवोंकी विराधना नहीं टरी तिसकें वाह्य परीषह सहना तपश्चरण करना दीक्षा लेना वृथा हैं संसार में दुःखित जीवोंको संयम विना कोई अन्य शरण नहीं है ज्ञानी पुरुष तो सदा ऐसा विचार करे हैं जो संयम विना एक घडी भी मत जावो संयम विना आयु निष्फल है यह संयम है सो इस भवमें अर परभवमें शरण है दुर्गतिरूप सरोवर के शोषण करने को सूर्य्य है संयम करके ही संसार रुपी विषम वैरीका नाश होय है संसार परिभ्रमण का नाश विना संजम के नहीं होय ऐसा नियम है अर जो अन्त रंगमें तो कषायों करि आत्माको मलीन नहीं होने देय है अर वाह्य यत्नाऽचारी हुआ प्रमाद रहित प्रवर्ते हैं तिसके संयम होय है इस प्रकार संयम धर्मका वर्णन समाप्त हुआ ।

अथ सप्तम तप धर्म वर्णन (७)

द्वादशं द्विविधंचैव वाह्याभ्यन्तर भेदतः
स्वयं शक्ति प्रमाणेन क्रियते धर्म वेदिभिः ॥ १ ॥

अर्थात्—(द्वादशं द्विविधंचैव वाह्याभ्यान्तर भेदतः) आभ्यंतरके छः वाह्य के छः ऐसे तप वारह प्रकार है तथा वाह्य और आभ्यन्तर के भेदस तप दो प्रकार है (धर्म वेदिभिः) धर्मके जानने वाले भव्य पुरुषों को (स्वयं शक्ति प्रमाणेन यह उत्तम तप अपनी अपनी शक्तिके अनुसार करना चाहिये ॥ १ ॥

णरभवपावेप्पिणु तच्चमुणेप्पिणु खंचिवि पंचेंदिय समणु
णिव्वेउ पमंडिवि संगइ छंडिवि तउ किज्जइ जाएवि वणु ॥२॥

अर्थात्—(णरभवपावेप्पिणु तच्चमुणेप्पिणु) मनुष्य भव कोपाकर समस्त तत्वों का ज्ञान सम्पादन करना चाहिये (खंचि विपञ्चेंदिय

समणु णिव्वेउ) और पाञ्चो इन्द्रिय और मनके व्यापारको रोककर (परमंडिवि संगइछंडिवि) वैराग्य धारणकर समस्त परिग्रह छोडना चाहिये (तउ किज्जउ जाएविवणु) और पश्चात वनमें जाकर यह उत्तम तप करना चाहिये ।। २ ।।

तंतउ जहिं संगइ छंडिज्जइ । तंतउ जहिंभयणु विखंडिज्जइ
तंतउ जहिं णग्गत्तणुदीसइ । तंतउजहिं गिरकंदरि णिवसइ ।।३।।

अर्थात्—(तंतउ जहिसंगइ छंडिज्जइ) वह तप जहा बाह्य और आभ्यन्तर परिग्रह का त्याग किया जाता है वहीं होता है (तंतउ जहिं भयणु विखंडिज्जइ) वह तप जहां कामदेव वश में किया जाता है वहां होता है (तंतउ जाहिंणग्गतणु दीसइ) वह तप वहीं है जहां साक्षात् दिगम्बर पना दिखाई पडे अर्थात् विना दिगम्बर मुद्राके तप होनहीं सक्ता (तंतउ जहिं गिरिकंदर णिवसइ) और तप वही है जिसके करने में पहाड की गुफाओं में निवास करना पडै ।। ३ ।।

तंतउ जहिं उपसग्ग सहिज्जइ । तंतउ जहिंरायाइ जिणिज्जइ
तंतउ जहिंभिक्खइ भुंजिज्जइ । सावयगेह कालियगमिज्जइ ।।४।।

अर्थात्—(तंतउ जहिउपसग्ग सहिज्जइ) जिसमें अनेक प्रकारके उपसर्ग सहन किये जाते हैं वही तप है (तंतउ जहिरागादि जिणिज्जइ) तप वह है जहां रागादि विभाव परिणाम क्षय होते हैं (तंतउ जहिं भिक्खइ भुजिज्जइ सावयगेहिं कालियगमिज्जइ) और जिसमें योग्य कालमें श्रावक के घर जाकर भिक्षा भोजन किया जाता है वही तप है ।। ४ ।।

तंतउ जत्थ समिदिपरिपालणु । तंतउ गुत्ति तयहिं णिहालणु
तंतउ जहिं अप्पापर वुज्झइ । तंतउ जहिं भवमाणु णिउज्झइ ।।५।।

अर्थात्—(तंतउ जत्थ समिदि परिपालणु) जिसमें पांचों समितियों का पालन किया जाता है वह तप है तथा (तंतउ गुत्तितयहि

णिहालणु) जिसमें मनोगुप्ति वचन गुप्ति काय गुप्तिका पालन किया जाता है वह तप है (तंतउ जहिं अप्पा पर बुज्झइ) जिसमें आत्मा और आत्मा से भिन्न शरीरादि पुद्गलोंका ज्ञान होता है वह तप है (तंतउ जहिं भवमाणु जिउज्झइ) और जिसमें संसार के बढाने वाले मान माया लोभादिक का त्याग किया जाता है वह तप है ॥५॥

तंतउ जहिं सरुव मुनिज्जइ । तंतउ जहं कम्महगँण खिज्जइ
तंतउ जहिं सुरभत्ति पयासहिं । पवयणत्थ भवियणहँ पयासइ ॥६॥

अर्थात्—(तंतउ जहिं सरुव मुणिज्जइ) जिसमें केवल आत्मा के स्वरुपका ज्ञान होता है उस तप कहते हैं (तंतउ जहिं कम्म हँगण खिज्जइ) जिसमें निखिल कर्मों के समूह नाश होते हैं उस को तप कहते हैं (तंतउ जहँ सुरभत्ति पयासइ) तप वही है जिसकी इन्द्रादिक देवभी भक्ति प्रगट करें स्तुतिकरें (पवय णत्थ भवियणहँ पयासइ) तथा पुरुषों के उपकारके लिये जो शास्त्रोंको व शास्त्रोंके अर्थको सुनाना पढना पढाना भी तप है ॥ ६ ॥

जेणतवेकेवलुजिउपज्जइ । सासइ सुक्खणिच्च संपज्जइ ॥ ७ ॥

अर्थात्—(जेणतवे केवलुजिउपज्जइ) तप वही प्रशंसनीय है कि जिसके द्वारा केवल ज्ञान ही उत्पन्न हो (सासइ सुक्खणि च्चसंपज्जइ) और नित्य अविनाशी मोक्ष सुखकी प्राप्ति हो ॥ ७ ॥

वारहविहतववरु दुग्गइ पहहरु तंपुजिज्जइ थिरमणणे
मच्छरु मइ छंडिवि करणइ दंडिवि तंपिधारज्जिइ गउरविणा ॥७॥

अर्थात्— (वारहविह तववरु दुग्गइ पहहरु) यह श्रेष्ठ बारह प्रकार तप दुर्गतियों के मार्ग को हरण करने वाला है (तंपुजिज्जइ थिरमणणे) इसलिये स्थिरमनसे इसकी पूजा करनी चाहिये (मच्छरुमइ छंडिवि करणइदंडिवि) तथा मत्सरता और मद को छोड़कर पांचों

इन्द्रियोंको वश करके (तंपिधारिज्जइ गउरविणा) यह उत्तम तप गौरवरहित पुरुषों को धारण करना चाहिये ॥ ८ ॥

यहां विशेष ऐसा है इच्छाका निरोध करना सो तप है तप चार आराधना ओंमें प्रधान है जैसे सोनेको तपानेकर जब सोला ताव लगै तब समस्त मल छोडि शुद्ध होय है तैसे आत्मा भी द्वादश प्रकार तप के प्रभाव करि कर्म मल रहित शुद्ध होय है अज्ञानी मिथ्या दृष्टी तो देहको पञ्च अग्नि कर तपावे हैं तथा अनेक प्रकार कायके क्लेशको तप कहै हैं सो तप नहीं है। कायको दग्ध किये मार लिये कहा होय मिथ्या दृष्टि ज्ञान पूर्वक आत्माको कर्मके बंध ते छुडाना नहीं जाने है। कर्ममल कलंक रहित आत्माको भेद विज्ञान पूर्वक अपने आत्माका स्वभावको अर राग द्वेष मोहादिरुप भावकर्म रुप मैलको भिन्न देखे हैं जिससे राग द्वेष मोहरुप मल दूर होजाय अर शुद्ध ज्ञान दर्शन मय आत्मा भिन्न होजाय सो तप है याही तें कहै हैं मनुष्य भवपाय जो स्वपर तत्वका जाना है तो मन सहित पञ्च इन्द्रियनको रोकि विषयनितें विरक्त होय समस्त परिग्रहको छांडि वंधके करने वाली राग द्वेष मय प्रवृत्ति छोडि पांचका आलम्बन छूटने के अर्थ ममता नष्ट करने को वनमें जाना सो तप है। ऐसा तप धन्य पुरुषोंके होय है संसारी जीवों के ममता रुप बडी फांसी है सो ममता रूप जालमें फंसा हुआ घोर कर्म को करता महा पापका वंधकर रोगादिककी तीव्र वेदना अर स्त्री पुत्रादि समस्त कुटुम्ब का तथा परिग्रहका वियोगादिक ते उपजा तीव्र आर्त ध्यानतें मरण पाय दुर्गतियों के घोर दुखो को जाय प्राप्त होय है। तपोवन को जाय प्राप्त होना महान दुर्लभ है तपतो कोई महा भाग्य पुरुष पापों से विरक्त होय समस्त स्त्री पुत्र धनादिकतें ममत्व छोड परम धर्मके धारक वीतराग निर्ग्रंथ गुरुओंके चरण का शरण पावे है तथा गुरुओं को पाय करि जिसके अशुभ कर्मका उदय अतिमंद होय सम्यक्त रुप सूर्यका उदय प्रगट होय अर जिसके संसार शरीर भोगोंसे विरक्तता उपजी होय सो तपग्रहण करे है अरजो ऐसे दुद्धर तपको धारण करके भी कोई पापी विषयोंकी वांच्छा करि बिगाडे है तिसके अनंतानंत कालमें

भी फिर तप नही प्राप्त होय है इस कारण मनुष्य भव पाय तत्वोंका स्वरुप जानि मन सहित पञ्च इन्द्रियोंको रोकि वैराग्य रूप होय समस्त संगको छोडि वनमें एकाकी ध्यान में लीन हुवा तिष्ठे सो तप है। जहां परिग्रहमें ममता नष्ट होय वांछा रहित तिष्ठना तथा प्रचंड कामका खंडन करना सो बड़ा तप है। जहां नग्न दिगम्बररुप शरीर शीतकी आतापकी पवनकी वर्षाकि तथा डांसमांसमच्छर मक्षिका मधु मक्षिका सर्प विच्छू इत्यादिकते उपजी घोर वेदना को कोरे अंगपर सहना सो तप है। अर जो निर्जन पर्वतों की निर्जन गुफाओंमें भयंकर पर्वतोंके के दराडोंमें तथासिंह व्याघ्र स्याली चीता रीछ इत्यादि करव्याप्त घोर वनोंमें निवास करना सो तप है। तथा दुष्ट वैरी म्लेच्छ चोर शिकारी मनुष्य तिर्यञ्च अर दुष्टव्यन्तरादिदेवों कृत घोर उपसर्गोंसे कम्पायमान नही होना धीरवीर पनाते कायरता छोड़ि वैर विरोध छोड़ि समता भावतें परमात्माका ध्यानमें लीन हुआ सहना सोतप है। तथा समस्त जीवोंको उलझावने वाले राग द्वेषोंको जीतना नष्ट करना सो तप है। तथा जो याचना रहित भिक्षाके अवसरमें श्रावकका वरमें नवधा भक्ति-कर हाथमें रक्खा खारा अलूना कडवा खाटा लूखा चीकना रस नीरसतिसमें लोलुपता अर संक्लेश रहित निर्दोष प्रासुक आहार एक वार भक्षण करना सो तप है। तथा जो पांच समितियोंका पालना अर मन वचन कायको चलायमान नहीं करना अपना राग द्वेष रहित आत्माका अनुभवन करना सो तप है। जो स्वपर तत्वकी कथनीका निर्णय करना चार अनुयोगोका अभ्यासकरि धर्म सहित काल व्यतीत करना सो तप है। तथा अभिमान छोडि विनयरुप प्रवर्तना कपट छोडि सरल परिणाम धारना क्रोध छोडि क्षमा ग्रहण करना लोभ त्याग निर्वाञ्छक होना सो तप है। जिससे कर्म के समूहको नाश कर आत्मा स्वाधीन होजाय सो तप है। जो सूत्रके अर्थका प्रकाश करना व्याख्यान आपनि रन्तर अभ्यास करे अन्यको अभ्यास करावे सो तप है। तपस्विन का देव तथा इन्द्र स्तवन भक्ती करे है तपकरि केवल ज्ञान उत्पन्न होय है तपका अचिन्त्य प्रभाव है तपके मांहि परिणाम होना अति दुर्लभ है

नरक तिर्यञ्च देवोंमें तपकी योग्नता हीनहीं एक मनुष्य गतिमें ही होय मनुष्य गतिमें भी उतम कुल जाति बल बुद्धि इन्द्रियों की पूर्णता जिसके होय तथा रागादिकों की मन्दता जिसके होय तथा विषयोंकी लालसा जिसके नष्ट हुई होय तिस पुरुषके होय है अर तप द्वादश प्रकार है जिसकी जैसी शक्ति होय तिस प्रमाण धारण करो बालककरो वृद्ध करो धनाढ्य करो निर्धन करो बलवान करो निर्बल करो साहाय सहित होय सो करो सहाय रहित होयसो करो भगवान करि निरूपण किया तप किसीके भी करनेको अशक्य नहीं है। जिससे वायुपित्त कफादिकोंका प्रकोपन ही होय रोगकी वृद्धि नहीं होय जैसे शरीर रत्नत्रयको सहकारी बना रहै तैसे अपना संहनन बल वीर्य देख तपकरो। तथा देशकाल आहारकी योग्नता देखि तप करो। जैसे तपमें उत्साह बढ़तो रहै परिणामोंमें उज्वलता बढती जाय तैसे तपकरो तथा जो इच्छाका निरोध करि विषयोंमें राग घटावना सो तप है तपही से जीवका कल्याण होय है काम, निद्रा, प्रमाद को नष्ट करनेवाला है इस कारण मद छोडि बारह प्रकार तपमें जैसा जैसा करनेको सामर्थ होय तैसा ही तपकरो इस प्रकार तप धर्मका वर्णन किया.

अथ अष्टम त्याग धर्म वर्णन (८)

चतुर्विधाय संघाय दानं चैव चतुर्विधम्
दातव्यं सर्वदा सद्भिश्चिन्तकैः पारलौकिकैः ॥ १ ॥

अर्थात्—(दानं चैव चतुर्विधम्) आहार दान, औषध दान, अभयदान, ज्ञानदान ऐसे दान चार प्रकारका है (चिन्तकैः पारलौकिकैः सद्भिः) सो परलोकका चिन्तवन करनेवाले सज्जनोंको उक्त चारों प्रकारका दान (चतुर्विधाय संघाय) मुनि-अर्जिका, श्रावक, श्रावका, ऐसे चार प्रकारके संघके लिये (सर्वदा दातव्यं) हमेशा देना चाहिये ॥ १ ॥

चाउविधम्मंगउ तंजिअहंगउ णियसत्तिय भुत्तिइ जण हु
पतहँ सुपवित्तहँ तवगुण जुतहँ परगइ संवलु तं मुणहु ॥ २ ॥

अर्थात्—(चाउविधम्मंगउ) दान देना भी धर्मका एक अंग है (तंजिअहंगउ णिय सत्तिय भुत्तिइ जणहु) इसलिये इस को भक्ति पूर्वक अपनी शक्तिके अनुसार पूर्ण रीतिसे करना चाहिये (तव गुण जुतह पतह सपवितह) और गुणों सहित असे पात्र तथा सुपात्रके लिये सदा करना चाहिये (परगइ संवलु तंमुणाहु) दान देना ही परगतिके लिये पाथेय (मार्गमें खानेयोग्य पदार्थ) है असा जानो ॥ २ ॥

चाए अव गुणगण जिउहट्टइ । चाएणिम्मल किति पवट्टइ
चाए अरिगण पणवहिपाए । चाए भोगभूमिसुरजाए ॥ ३ ॥

अर्थात्—(चाए अव गुणगण जिउहट्टइ) दान देनेसे अवगुणोंका समूह सहज ही नाश होजाता है (चाएणिम्मल कितिपवट्टइ) दान देनेसे चारों ओर निर्मल किर्ति फैलती है (चाए अरिगण पथवहिपाए) दान देनेसे शत्रु समूह भी पैरोपर पडकर नमस्कार करता है (चाए भोग भूमि सुय जाए) और दान देनेसे भोग भूमिके सुख मिलते हैं ॥ ३ ॥

चाए विहिजइ णिच्चुजि विणयं । सुह वयणइ भासे पुणपणयं
अभयदान दिज्जउ पहलाउ । जिमणासे परभव दुह पारउ ॥ ४ ॥

अर्थात्—(चाए विहिजइ णिच्चुजिविणयं) दान देनेमें नित्यही विनय प्रगट करना चाहिये (सुहवयणइ भासे पुणपणयं) और प्रेम पूर्वक शुभ वचन कहने चाहिये (अभयदान दिज्जउ पहि-लाउ) चारों दानोंमें सबसे प्रथम अभयदान देना चाहिये (जिम-णासे परभव दुह पारहू) जिससे परभवके समस्त दुःख समूहोंका नाश होवे अर्थात् परभवके दुख दूर करनेवाला अभयदान ही है इसलिये यह प्रथम अर्थात् प्रधान दान कहा गया है ॥ ४ ॥

सत्थदाण वीयजपुण किज्जइ। णिम्मलणाण जेण पाविज्जइ
ओसह दिज्जइ रोय विणासणु। कहविणपिच्छइ वाहिपयासणु ॥५॥

अर्थात्—(सत्थदान वीजय पुणकिज्जइ दूसरा दान शास्त्रदान अर्थात् शास्त्र प्रदान करना, विद्यापढाना, पढते हुए को सहायता करना, पाठशाला खोलना आदि करना चाहिये जिससे निर्मल ज्ञानकी प्राप्ति हो (णिम्मलणाण जेण पविज्जइ) क्योंकि शास्त्र दान वाविद्यादानसे निर्मल केवल ज्ञानकी प्राप्ति होती है (ओसह दिज्जइ रोय विणासणु) तीसरा समस्त रोगोंको नाश करनेवाला औषधदान देना चाहिये (कहविणपिच्छइ वाहिपयासणु) की जिससे किसी प्रकार की आधि व्याधि उत्पन्न नहो अर्थात् औषधि दान देनेसे सब आधि व्याधि रोगादिक दूर होजाते हैं ॥ ५ ॥

आहारेधणरिद्धि पवट्टइ। चउविह चाउ जिएहु पवट्टइ
अहवा दुट्टवियप्पह चाए। चाउजिएहु मुणहु समवाये ॥ ६ ॥

अर्थात्—(आहारे धणरिद्धि पवट्टइ) आहार दान देनेसे धन रिद्धि आदिककी वृद्धि होती है (चउविहचाउ जिएहु पवट्टइ) इस प्रकार अभयदान शास्त्रदान औषधदान और आहार दान ये चारों ही दान देने चाहिये। यह व्यवहार दान कहा। (अहवा दुट्ठ वियप्पह चाए) अब अथवा करके निश्चय त्याग का स्वरूप कहते हैं दुष्ट विकल्पोंका (चाउजिएहु मुणहुसमवाए) साम्यपरिणामों सेजो त्याग करना है वही उत्तम त्याग है ऐसा जानना ॥ ६ ॥

घत्ता दुहियहिं दिज्जइ दाणुकिज्जइ माणु जि गणु यणहं
दयभावियइ अभंगदंसणु चिंतइभवियणहं ॥ ७ ॥

अर्थात्—(दुहियहिं दिज्जइ) संसारमें जो दुखी जीव हैं उनको दान देना चाहिये (दाणुकिज्जइ माणुजिगुणगणहं) औरजो गुणी पुरुष हैं अर्थात् जो सम्यग्दर्शनादि गुणोंकर सहित हैं उनका विशेष सत्कार करना चाहिये (दयभावियइ) समस्त जीवोंपर

अटल दयाकी भावना होनी चाहिये (अभंग दंसणुचित्तइ भवियणहं) और भव्यजनोंके दर्शनकी सदा अभिलाषा रखनी चाहिये यही त्याग धर्म है ॥ ७ ॥

यहां विशेष त्यागका स्वरूप ऐसे जानना जोधन सम्पदादिक परिग्रहको कर्मका उदय जनित पराधीन विनाशीकअर अभिमानके उपन्न करनेवाला तृष्णाको बढानेवाला राग द्वेषकी तीव्रता करनेवाला आरम्भकी तीव्रता करनेवाला हिंसादिक पञ्च पापोंका मूल जान उत्तम पुरुष इसको अंगीकार ही नहीं किया ते धन्य हैं। किसीने इसको अंगीकारकर हालाहलविष समान जान पुरानेनिकेके समान त्याग किया उनकी अचिन्त्य महिमा है। अरकोई जीवोंके तीव्र राग भाव मंद हुआ नहीं इस वास्ते सर्व प्रकार त्यागनेको समर्थ नहीं अर सराग धर्ममें रुचि धारे है अर पापोंसे भयभीत हैं ते इस धनको उत्तम पात्रोंके उपकारके आर्थ दानमें लगावे हैं अर जोधर्म के सेवन करनेवाले निर्धन जन हैं तिनका अन्न वस्त्रादिक उपकार करनेमें धन लगावे हैं तथा धर्मके आयतन जिन मंदिरादिकोंमें जिन सिद्धान्त लिखाय देनेमें तथा उपकरणोंमें पूजनादिक प्रभाव नांगमें लगावे हैं तथा दुःखितदारिद्री रोगीनके उपकारमें तन मन धन करुणावान होय लगावे हैं तेधन जीतव्य कों सफल करे हैं। दान है सोधर्मका अंग है इस वास्ते अपनी शक्ती प्रमान भक्तिकर गुणोंके धारक उज्जल पात्रोंको दान देना है सो परलोकको जावते महान सुख सामिग्री लेजाना है सोनिर्विघ्न स्वर्गको तथा भोग भूमिको प्राप्त करनेवाला जानो। दानकी महिमा तो अज्ञानी बालगोपालभी कहे हैं कि जो पूर्व भवमें दान दिया है सो नाना प्रकार सुख सामिग्री पावे है अर देगा सो पावेगा इस वास्ते सम्पदाका वाञ्छक होय सो दान देनेमें ही अनुराग करो। अरजो दान करनेमें उद्यमी नहीं केवल मरण पर्यन्त धनका सञ्चय करनेमें उद्यमी हैं ते यहांभी तीव्र आर्त परिणामतें मरणकर सर्पादि दुष्टतिर्यञ्च गतिपाय नर्क निगोद गतिको जाय प्राप्त होय है। धनक्या साथ जायगा धन पावना तो

दान हीतें सफल है दान रहितका धनघोर दुखोंकी परिपाटीका कारण है अर कृपण इहांभी घोर निन्दाको पावे है कृपण का नाम भी लोक नही कहै हैं कृपण सूमका नाम लोक अमंगल माने है अर जिसमें अनेक प्रकार अवगुण दोप भी होय तो दानी का दोष ढकि जाय है दानीका दोप दूर भागे है दान करही निर्मल कीर्ति जगत में प्रसिद्ध होय है। देने करि बैरी भी चरणोंको नमस्कार करता है। दान देने तें वैरी वैर छोडे हैं अपना हित करने वाला मित्र हो जाय है जगत में दान ही वडा धर्म है थोडासा दान भी सत्यार्थ भक्तिकर करनेवाला भोगभूमिका तीन पल्य पर्यन्त भोग भोगि देव लोक जाय है देनाही जगत में ऊंचा है दान देना विनय संयुक्त स्नेहका वचन सहित होय देना चाहिये अर दानी है ते असा अभिमान नहीं करे हैं जो हम इसका उपकार करे हैं। दानी तो पात्रको अपना महान उपकार करने वाला माने है जो लोभ रुप अंध कूपमें पडने का उपकार पात्रविनाकोन करे पात्रों के विना लोंभी पुरुषोंका लोभ नहीं छूटता अर पात्रविना संसार के उद्धार करने वाला दान कैसे बनता। इस वास्ते धर्मात्मा पुरुषोंके तो पात्रोंके मिलने समान अरदान देने समान अन्य कोई आनंद नही है वडा पना ज्ञानीपना धनाढ्य पना पाया है तो दान में ही उद्यम करो। छह कायके जीवोंको अभयदान दो अभक्ष्का त्यागकर वहु आरंभके घटानेके करि देखिसोधि मेलना धरना यत्नाचार विना निर्दयी होय नहीं प्रवर्तना किसी प्राणी मात्रको मन वचन कायसे दुःखित मत करो। दुःखी जीवोंकी करुणा ही करो येही गृहस्थके अभयदान है क्योंकि संसारमें जन्म मरण रोग शोक वियोग दरिद्र आदि सन्तापका पात्र नही होवोगे। तथा संसार के वढानेवाले हिंसाको पुष्ट करनेवाले तथा मिथ्या धर्मकी प्ररुपणा करनेवाले तथा युद्ध शास्त्र श्रृंगारशास्त्र माया चारके शास्त्र वैद्यक शास्त्र रस रसायण मंत्र जंत्र मारण वशी करणादि शास्त्र महापाप के प्ररुपक हैं इनको अति दूरते ही त्याग भगवान वीतराग सर्वज्ञ का कहा दया धर्म का उपदेश

देनेवाला स्याद्वदरूप अनेकान्त का प्रकाश करनेवाले नय प्रमाण करि तत्वार्थ की प्ररूपणा करनेवाले शास्त्रोंको अपने आत्माको पढनेपढाने करि आत्माके उद्धार के अर्थ अपने अर्थ दान करो। अपनी सन्तान को ज्ञान दान करो तथा अन्य धर्म बुद्धी धर्मके रोचक इच्छक तिनको शास्त्र दान करो ज्ञानके इच्छक हैं ते ज्ञान दानके अर्थि पाठशाला स्थापन करे हैं क्योंकि धर्मका स्तम्भ ज्ञान ही है। जहां ज्ञान दान होगा तहां ही धर्म रहेगा इस वास्ते ज्ञान दानमें प्रवर्तन करो। ज्ञान दानके प्रभावतें निर्मल केवल ज्ञानकों पावे हैं। तथा रोगका नाश करवेवाला प्रासुक औषधिका दान करो औषध दान बडा उपकारक है अर रोगीकों सीधी तय्यार औषध मिले हैं ताका बडा आनंद है निर्धन होय तथा जिसके टहल करनेवाला नहीं होय तिसको औषध बनी हुई मिल जाय तो निधान (खजाना) के लाभ समान माने हैं औषध लेय निरोग होय हैं सो समस्त व्रत तप संयम पाले हैं ज्ञानका अभ्यास करे हैं औषध दान करने वालेके वात्सल्य गुण स्थितिकरणगुण निर्विचिकित्सागुण इत्यादि अनेक गुण प्रगट होय हैं औषध दानके प्रभावतें रोग रहित देवोंका वैक्रियक शरीर पावे है। तथा आहार दान समस्त दानों में प्रधान है प्राणीकी जीवन शक्ति बल बुद्धि ये समस्तगुण आहार विना नष्ट होजाते हैं जिन्होंने आहार दिया तिन्होंनें जीवन शक्ति समस्त दीना। आहार दानही से मुनिश्रावक का सकल धर्म प्रवर्ते है आहार विना मार्ग भृष्ट होजाय आहार है सो समस्त रोगोका नाश करनेवाला है जो आहार दान देना है सोमिथ्या दृष्टीभी भोग भूमिमें कल्प वृक्षोंका दशांग भोगकों असंख्यात काल भोगे अरक्षुधा तृषादिककी बाधा रहित हुआ आवले प्रमान तीन दिनके आन्तरे भोजन करे। समस्त दुःखके शरहित असंख्यात वर्ष सुख भोग देव लोकमें जाय उपत्र होता है इस वास्ते धनको पाय चार प्रकारके दान देने में प्रवर्तन करो। अरजो निर्धन हैं तेभी अपने भोजनमें ते जितना बने तितना दान करो आपको आधा पेट भोजन मिले उसमेंसे भी ग्रास दोय

ग्रास दुखित सुखित जीवों को देओ। तथा मिष्ट वचन बोलनेका बड़ा दान है आदर सत्कार विनय करना स्थान देना कुशल पूछना ये महा दान हैं तथा दुष्ट विकल्पोंका त्याग करो पापोंमें प्रवृत्तिका त्याग करो चार कषायों का त्याग करो विकथा करने का त्याग करो परके दोष सत्य असत्य कदाचित मत कहो तथा अन्यायका धन ग्रहण करनेका दूरही ते त्याग करो हे ज्ञानी जन हो जो अपने हितके इच्छक होतो दुःखितजीवों को तो दान करो अ सम्यग्दर्शन सम्यग्ज्ञानादि गुणों के धारकोंका महाविनय सन्मान करो समस्त जीवोंमें दयाकरो मिथ्या दर्शनका त्यागकरो रागद्वेष मोहके धारक कुदेव अर आरम्भ परिग्रह के धारक भेषधारी अर हिंसाके पोषक रागद्वेषकों पुष्ट करनेवाले मिथ्या दृष्टी नके शास्त्र इनकों वंदना स्तवन प्रसंशा करनेका त्याग करो क्रोध मान माया लोभ इनके निग्रह करनेमें बड़ा उद्यम करो क्लेश करनेके कारण अप्रिय वचन गाली के वचन अपमान के वचन मद सहित कदाचित मत कहो इत्यादि जो परके दुःखके कारण तथा अपना यशकों नष्ट करनेवाला धर्मको नष्ट करनेवाला मन वचन कायके प्रवर्तन का त्याग करो इस प्रकार त्याग धर्मका वर्णन किया ॥ ८ ॥

अथ नवम आकिञ्चन्य धर्म वर्णन (९)

चतुर्विंशति संख्यातो यः परिग्रह भेदतः
तस्य संख्या प्रकर्तव्यातृष्णारहित चेतसः ॥ १ ॥

अर्थात्—(यः परिग्रह भेदतः चतुर्विंशति संख्यातः) जो बाह्य और आभ्यन्तरके भेदसे परिग्रह चौवीस प्रकार कहा है (तस्य तृष्णा रहितचे तसा संख्या प्रकर्तव्या) उसका नियम तृष्णारहित चित होकर करना चाहिये ॥ १ ॥

आकिञ्चणभावहु अप्पहुज्झावहु देंहहुभिण्णउणाणमऊ
णिरु वमगयवण्णउ सुह संयण्णउ परम अतिंदिय विगयभयो ॥२॥

अर्थात्—(देहहुभिण्णउ णाणमओ णिरुवमगय वण्णउ सुह संपण्णउ) शरीरसे भिन्न, ज्ञानस्वरुप, उपमारहित, वर्णगन्धादिर-हित, सुखसेसम्पन्न, परमअतिंद्रिय, (विगयभंओ) और भयसे रहित (आकिञ्चण भावहु अप्पहु ज्झावहु) आत्माका ध्यान करो और यही अर्थात् शुद्ध आत्माका ध्यान करना ही आकिञ्चन्य धर्म है ऐसा चिन्तवन करो ॥ २ ॥

आकिञ्चणु वउ संगहँणिवित, आकिञ्चणुवन सुह ज्ञाणसति
आकिंचणु वउ वियलियममत्ति आकिंचण रयणत्तयपवित ॥३॥

अर्थात्—(आकिंचणु वउसंगहँणिवित) समस्त परिग्रहका त्याग करना आकिञ्चन्य व्रत है। (आकिञ्चणु वउ सुह ज्ञाणसति) तथा आत्मामें शुभ ध्याकी शक्ती प्रगट होना सो आकिञ्चन्य व्रत है (आकिञ्चण वउ सुहलुहज्ञाणसति) ममत्व परिणामोंका त्याग करना अर्थात् चेतन अचेतनात्म द्रव्योंके अर्जन रक्षणादिककी इच्छा का त्याग करना आकिञ्चन्य व्रत है (आकिञ्चणरयणतयपवित्त) और रत्नत्रय अर्थात् सम्यग्दर्शन सम्यग्ज्ञान सम्यक्चारित्र की प्रवृत्ति करना अर्थात् इनको धारण करना आकिञ्चन्य व्रत है ॥ ३ ॥

आकिञ्चणु आउञ्चिय इचित, पसरंतउ इन्दियवणुविचित
आकिञ्चणुदेहहु णेहचतु । आकिञ्चणजं भवसुह विरत ॥ ४ ॥

अर्थात्—(आंकिञ्चणु आउञ्चियइचित) विचित्र इन्द्रियरुपी वनमें यथेच्छ विहार करते हुवे मनको संकुचित करना अर्थात् मनकी प्रवृत्तिको रोकना सो आकिंचन्य व्रत है (आकिंचणु देहहुणेहचतु) तथा शरीरसे स्नेह (ममत्वपरिणाम) छोड़ना आकिञ्चन्य धर्म है (आकिंचणजंभव सुहविरत) और संसारके सुखोंसे विरक्त होना

अर्थात् संसारके सुखोंका और उनके साधनोंका त्याग करना सो आकिंचन्य व्रत है ॥ ४ ॥

तिणमित्तपरिग्गह जत्थणत्थि आकिंचणसो णियमेण अत्थि
अप्पा परमत्थविचारसत्ति पड्डिज्जइ जिह परमेट्ठिभत्ति ॥ ५ ॥

अर्थात्—(तिणमित्तपरिग्गह जत्थिणत्थि) जहां त्रणमात्र भी परिग्रह नही है (आकिञ्चणुसोणियमेण अत्थि) वहीं नियमसे आकिञ्चन्य व्रत होता है (अप्पापरमत्थविचार सति) जहां परमार्थ अर्थात् शुद्ध आत्माके विचार करनेकी शक्ति प्रगट होती है (पड्डिजइ जिहिं परमेट्ठिभत्ति) तथा जहां पञ्चपर मेष्टी की भक्ति पढी जाती है वहीं आकिञ्चन्य व्रत जानना ॥ ५ ॥

छंडिज्जइ जहिं संकप्पदुट्ठ । भोयणुवंधिज्जइ जहिं अनिट्ठ
आकिंचणुधम्मु जिएम होय । तंझाइज्जइ णिरु इत्थ लोय ॥६॥

अर्थात्—(छंडिज्जइ जहिं संकप्प दुट्ठ) जहां दुष्ट संकल्पों का त्याग किया जाता है (भोयण वंधिज्जइ जहिंअणिट्ठ) और अनिष्ट नीरस भोजन ग्रहण किये जाते हैं (आकिंचणु धम्मुजिएम होय) वहीं आकिंचण धर्म्म होता है (तंझाइज्जइ णिरु इत्थलोय) इस लोकमें निरन्तर इसीका ध्यान किया जाता है ॥ ६ ॥

एयहु जि पहावें लद्धसहावें तित्थेसर सिवणयरगया
गयकाम वियारा पुण रिसिसारा वंदणिज्जतेतेण सया ॥ ७ ॥

अर्थात्—(एयहुजिपहावे लद्धसहावें) इसी आकिञ्चन्य धर्म के प्रभावसे और इसीकी सहायतासे (तित्थेसर सिवणयरगया) इसीकी सहायतासे श्रीतीर्थंकर परमदेव मोक्ष पधारे हैं (गयकाम-वियाए पुण रिसिसारा) तथा और भी जो कामदेवके विकारोंसे रहित रिषीश्वर हैं (वंदणिज्जते तेणसया) इसी आकिंचन्यके प्रभावसे सदा वंदनीय और पूज्य होते हैं ॥ ७ ॥

इसका विशेष स्वरूप ऐसा है जो अपना ज्ञान दर्शन मय स्वरुप विना अन्यकिञ्चित् मात्र भी हमारा नही है मैं किसी अन्य द्रव्यका नही हूं मेरा कोई अन्य द्रव्य नही है ऐसे अनुभवको आकिञ्चन्य कहिये हैं । भो आत्मन् अपने आत्माको देहतें भिन्न अर ज्ञानमय अन्य द्रव्यकी उपमारहित अरस्पर्शरसगंधवर्ण रहित तथा अपना स्वाधीन ज्ञाना नंद सुख करपूर्ण परम अतिं द्रिय भय रहित ऐसा अनुभव करो । भावार्थ—यह देह है सो मैं नहीं देह तो रक्त रुधिर हाड मांस चाम मय जड अचेतन है । मैं इस देहतें अत्यन्त भिन्न हूं ये ब्राह्मण क्षत्रिया दिजातिकुल देह के है मेरे नही है ये स्त्री पुरुष नपुंसक आद लिंगदेह के हैं मेरे नही है ये गोरापन सावलापना राजापना रंकपना स्वामीपनासे वकपना पंडितपना मूर्खपना इत्यादि समस्त रचना कर्मका उदय जनित देहके हैं मैं तो ज्ञायकहूं ये देह का संबंधी मेरा स्वरुप अन्य द्रव्यकी उपमा रहित है ताता ठंडा नरम कठोर लूखा चीकना हलका भारी अष्ट प्रकार स्पर्श हैं ते हमारा रुप नहीं पुद्गल के रूप है ये खाटा मीठा कड़वा कषायला चिरपरा पञ्च प्रकार रस अर सुगंध दुर्गंध दोय प्रकारका गंध अर काला पीलाह रास्वेत रक्त येपञ्च वर्ण मेरा स्वरूप नहीं पुद्गलका है मेरा स्वभावतो सुख करि परिपूर्ण है परन्तु कर्मके आधीन दुःख करि व्याप्त हो रहाहूं मेरा स्वरूप इन्द्रिय रहित अतिन्द्रिय है इन्द्रियां पुद्गल मय कर्मकर की हुई मैं समस्त भय रहित अविनाशी अखंड आदि अन्त रहित शुद्ध ज्ञान स्वभावहूं परन्तु अनादि काल से जैसे सुवर्ण और पाषाण मिल रहा है तैसे तथा क्षीर नीरज्यों कर्मों करि अनादि कालतें मिल रहाहूं तिनमें भी मिथ्यात्व नाम कर्म के उदय करि अपने स्वरूपका ज्ञान रहित होय देहादिक पर द्रव्योंको अपना स्वरुप जानि अनन्त कालमें परिभ्रमण किया अव कोई किंचित् आवरणादिकके दूर होनेसे श्रीगुरुओंका उपदेश्यापर मागमके प्रशादसे अपना अर परका स्वरूपका ज्ञान हुआ है जैसे रत्नोंका व्यौपारी जडे हुवे पञ्चवर्ण रत्नों के आभरणोंमें गुरुकी कृपासे अर निरन्तर

अभ्यासते मिल्या हूआ भी डाक कारंग अर माणिक्य कारंगकों अर तोलकों मोलकों भिन्न भिन्न जाने हैं तैसे पर मागमका निरन्तर अभ्यासते मेरा ज्ञान स्वभावमें मेल्या हुआ राग द्वेष मोह कामादिक मेलकों भिन्न जाण्या है अर मेरे ज्ञान स्वभावकों भिन्न जाना है इस वास्ते अब जैसे राग द्वेष मोहभाव आदिकर्मोंमें और कर्मोंके उदयतें उपजे विनाशीक शरीर परवार धन संपदादि परिग्रहमें ममत्व बुद्धि मेरे जैसें फिर अन्य जन्ममें भी नहीं उपजे तैसे आकिंचन्यभाऊं यह आकिञ्चन्यभावना अनादिकालतें नही उपजी समस्त पर्य्यायोंको अपना रुपमान्या तथा राग द्वेष मोह क्रोध कामादि भाव कर्म कृत विकार थें तिनको आपरुप अनुभव करि विपरीत भावोंसे घोर कर्म बंध किया अबमें आकिञ्चन्य भावनामें विघ्नका नाश करने वाला पञ्च परमगुरुओंका शरणतें आकिञ्चन्य ही निर्विघ्न चाहू हूं और त्रैलोक्य में कोई भी अन्यवस्तुकी वांछा नहीं करुं। यह आञ्चिन्य भाव नाहीं संसार समुद्रसे तारने को जहाज होउ। जो परिग्रहको महा-बंध जानि छोड़ना सो आकिंचन है जिसके आकिञ्चन्य पणा होय तिसके परिग्रहमें वांछा नहीं रहे है आत्मध्यानमें लीनता होय है देहादिक बाह्य भेषमें आपा नहीं रहै है अर अपना स्वरुप जो रत्न त्रयतामें प्रवृति होय हैं इन्द्रियोंके विषयोंमें दौडता मन रुकि जाता है देहसे स्नेह छुटि जाय है सांसारीक देवोंका सुख इन्द्र अहमिन्द्र चक्रवर्तिओंका सुख भी दुख दीखे है। इनमें वांछा कैसे करें! परि-ग्रह रत्न सुवर्ण राज्य ऐश्वर्य्य स्त्री पुत्रादिकों को जीर्णत्रणमें जैसे ममता रहित छोड़नें में विचार नहीं तैसे परिग्रह छोडे हैं। आकि-ञ्चन्यते तो परम वीतराग पणा है जिनके संसारका अन्त आगया तिनकें होंय है जिसकें आकिंचन्य पणा होय तिसकें परमार्थ जो शुद्ध आत्मा तिसके विचारने की शक्ति प्रगट होयही अर पञ्चपर-मेष्टीमें भक्ति होय ही अर दुष्ट विकल्पोंका नाश होय ही अर इष्ट अनिष्ट भोजनमें राग द्वेष नष्ट होजाय है केवल उदर रुप खाडा भरना अन्य रस नीरस भोजनमें विचार जाता रहे हैं समस्त धर्मोंमें

प्रधान धर्म आकिञ्चन्य ही मोक्ष्यका समागम निकट करावने वाला है अनादि कालसे जितने सिद्ध हुए हैं ते आकिञ्चन्यसे ही हुवे हैं अर आगे जोजो तीर्थ करादि सिद्ध होंयगे ते आकिञ्चन्य धर्म प्रधान करि साधुजनोंके ही होय है तथापि एक देश धर्मका धारक गृहस्थ उस धर्मके ग्रहण करणेकी इच्छा करे हैं अर गृह चारामें मंद रागी होय अति विरक्त होय है प्रमाणीक परिग्रह धारे हैं आगामी वांछा रहित है अन्यायका धन परिग्रह कदाचित ग्रहण नहीं करे हैं अल्प परिग्रहमें अति सन्तोष होय रहैं परिग्रहको दुखका देनेवाला अर अत्यन्त अस्थिरमाने है तिसके ही आकिञ्चन्य भावना होय है इस प्रकार आकिञ्चन्य धर्मका वर्णन किया ॥

अथ दशम ब्रह्मचर्य धर्म वर्णन (१०)

नवधा सर्वदापाल्यं शीलसन्तोप धारिभिः
भेदाभेदेन संयुक्त सद्गुरुणां प्रशादतः ॥ १ ॥

अर्थात्—(शीलसन्तोपधारिभिः) शील और सन्तोपके धारण करनेवाले भव्य जीवोंको (सद्गुरुणा प्रशादत) श्रेष्ट गुरुओंके प्रशादसे (भेदा भेदेन संयुक्तं सर्वदापाल्यं) भेद तथा अभेद रूपनौ प्रकारका ब्रह्मचर्य्य सदापालन करना चाहिये ॥ १ ॥

वंभव्वउ दुद्ध रधारिज्जइ वरुफेडिज्जइ विसयासाणिरु
तियसुक्ख इरतउ मणुकरभत्तउ तंजिभव्व रक्खेहुथिरु ॥ २ ॥

अर्थात्— हे भव्यजीवो (वंभव्वदुद्धरु) ब्रह्मचर्य्यव्रतमहा दुद्धर है (धारिज्जइ वरुफेडिज्जइ विसयासाणिरु) इसलिये विषयोंकी आसा-दूरकर इसको भले प्रकार अवश्य धारण करना चाहिये (तिय सुक्ख-इरतउ मणुकरभत्तउ तंजि भव्वरक्खेहुथिरु) और स्त्री सुखमें लीन हुए मदोन्मत मनरूपी हाथीसे रक्षा करके स्थिर करना चाहिये ॥ २ ॥

चित भूमि भयणु जिउप्पज्जइ । तेणाजिपीडिउ करइ अकज्जइ
तियहँ शरीरइ णिंदियसेवइ । णिय परणारिण मूढउ वेयइ ॥३॥

अर्थात्—चित्तभूमिमयणुजिउपज्जइ) कामदेव चितरूपी भूमिमे उत्पन्न होता (तेणजिपीडइकरइ अकज्जइ) उससे पीडित हुआ मनुष्य अन्याय और अकार्य करता है (तियहँ शरीरिय णिंदियसेवइ) स्त्रियोंके अत्यन्त निंदित शरीरको सेवन करता है (णियपरणार णमूढइ वेयइ) और वह मूर्ख फिर स्वऔर परस्त्री कोभी नहीं देखता ॥ ३ ॥

णिवडइ णरइ महादुखभुंजइ । सोहीणु जिवंभव्वउ भंजइ
इय जाणेप्पिणु मणवयकाएवंभचेरु पालहु अणुराए ॥ ४ ॥

अर्थात्—(णिवडइ णरइ महादुखभुंजइ सोहीणु जिव भव्वउ भंजइ) जो ब्रह्मचर्य व्रतका पालन नहीं करता वह नीच जीव नरकमें पड़कर महादुःख भोगता है (इयजाणेप्पिणु मनवयकाये वंभचेरु पालय अणुराये) ऐसा जानकर ब्रह्मचर्य व्रतको मन वचन कायके द्वारा प्रेम पूर्वक पालन करो ॥ ४ ॥

तेण सहु जिलब्भइ भवपारउ । वभंविणवउतउ जिअसारउ
वंभवेण विणकायलेसो । विहलसयल भासयइ जिणेसो ॥ ५ ॥

अर्थात्—(तेणसहुजि लब्भइ भवपारउ) समस्त जीव इस ब्रह्मचर्यके होनेसे ही संसार समुद्रसे पार होते हैं (वंभंविणवउतउजि असारउ) ब्रह्मचर्यके विना व्रतकरना तप करना सवव्यर्थ है (वंभवेण विणकाय किलेसो) और ब्रह्मचर्यके विना सव काय क्लेश (विहलसयल भासयइ जिणेसो) व्यर्थ है ऐसा श्रीजिनेन्द्र देवने कहा है ॥ ५ ॥

वाहिर फरसेंदिय सुखरक्खहु । परमवंभु आव्भंतर पिक्खहु
एणउवाए लब्भइ सिवहरु । इमरयधू वहुमणइ विणइयरु ॥ ६ ॥

अर्थात्—(वाहिरफरसेंद्रिय सुखरक्खहु) वाह्यस्पर्शन इन्द्रियसे आत्माकी रक्षा करो अर्थात् उससे वचो (परमवंभु अब्भंतरपिक्खहु) और

आत्मामें ही ब्रह्मचर्यको देखो (रणउवाए लब्भइ सिवहरु) इसी उपा-यसे अर्थात् आत्मामें लीन होनेसे मोक्षकी प्राप्ति होती है (इमरय धू वहुभणइ विणइयरु) ऐसे रइधू नामकवि अतिशय विनयके साथ वारम्वार कहते हैं ॥ ६ ॥

घत्ता जिणणाह महिज्जइ मुणिपणमिज्जइ दहलक्खणु पालियइ णिरु
भोखेमसिंह सुय भव्वविणय जुय होलिव मण इह करइ थिरु ॥ ७ ॥

अर्थात्—(जिणणाह महिज्जइ) श्रीजिनेन्द्र देवभी इस दसलक्षणिक धर्मकी महिमा वर्णन करते हैं (मुणिपणमिज्जइ) और श्रीमुनिराज भी इसको प्रणाम करते हैं (दहलक्खण पालियइणिरु) इसलिय होभव्य हो इसका नित्य पालन करो (भोखेम सिंह सुय भव्व विणय जुय होलिव मण इह करइ थिरु) और अतिशय विनय सहित ऐसी श्रीखेम-सिंह की पुत्री होली के समान अपने चितको स्थिर करो। भावार्थ आचा-र्यने होलीका दृष्टान्त दिया है। होली श्रीखेमसिंहकी पुत्री थी इसने मन वचन काय पूर्वक दशलक्षणक व्रत पालन किये थे। इन व्रतोंका पालन जैसा होलीने किये वैसा ही भव्य जीव पालन करे। ऐसा आचार्य्य का आशीर्वाद है ॥ ७ ॥

यहां विशेष स्वरुप ऐसा जानना कि समस्त विषयोंमें अनुराग छांडके ब्रह्म जो ज्ञायक स्वभाक आत्म तामें जो चर्य्या कहिये प्रवृत्ति सो ब्रह्मचर्य है। हे ज्ञानी जन हो यह ब्रह्मचर्य नाम व्रत बडा दुर्द्धर है हरेक जीव विषयोंके वश होते संते आत्म ज्ञान से रहित हैं वे इसको धारनेको समर्थ नहीं हैं जो मनुष्योंमें देवोंके समान हैं ते पुरुष धारण करने को समर्थ है अन्यरंक विषयोंकी लालसाके धारक ब्रह्मचर्य धारण करनेको समर्थ नहीं हैं यह ब्रह्मचर्य व्रत महादुद्धर है जिसके ब्रह्मचर्य्य होय तिसके समस्त इन्द्रिय अर कषायोंका जीतना सुलभ है। हे भव्यजीव हो स्त्रीयोंके सुखमें रागी जो मनरुप मदोन्मत हस्ती तिसको वैराग्य भाव-नामें रोक करिके अर विषयोंकी आशाका अभाव करके दुद्धर ब्रह्मचर्य

धारण करो यह काम है सो चितरूपी भूमिमें उत्पन्न होता है इसकी पीडा कर नहीं करने योग्य पाप ऐसे करे है क्योंकि यह काम मनको मथन करे है मनका ज्ञान को नष्ट करे है इससे इसको मन्मथ कहिये ज्ञान नष्ट हो जाय तब ही स्त्रीनका महादुर्गन्ध निन्द्य शरीरको रागी हुआ सेवन करता है अर काम करि अंधा होजाय तब महा अनीत को प्राप्त होय अपनी तथा परकी नारीका विचार नहीं करे है। जो इस अन्यायतें में यहां ही मारा जाऊंगा राजा का तीव्र दंड होयगा यश मलीन होयगा धर्म भ्रष्ट होजाऊंगा सत्यार्थ बुद्धी नष्ट हो जायगी मरण करि नरकोंके घोर दुख असंख्यात काल पर्यन्त भोग फिर असंख्यात तिर्यञ्च निके घोर दुःख रूप अनेक भवपाय कुमानुषोंमें अंधा लूला कूबडा दरिद्री इन्द्रिय विकल बहरा गूंगा चांडाल भील चमारोंके नीच कुलोंमें उत्पन्न हो फिर त्रस स्थावरोंमें अनन्त काल परिभ्रमण करूंगा ऐसा सत्य विचार कामीके नहीं उपजे है। इस कामके नाम ही जगत के जीवोंको प्रगट करे हैं। कं कहिये खोटा दर्प अर्थात् गर्व उप जावे इस कारण कंदर्प कहिये है। अति काम नाजो वांछा उपजाय दुःखितकरे तातें इसको काम कहिये। इस करि अनेक तिर्यञ्चोंके तथा मनुष्योंके भवोंमें लड़लड़ मरे है तातें मार कहिये है। सम्वरको वैरी तातें संबरारि कहिये। ब्रह्म जो तप संजम तिसतें सुवांते जो चलायमान करे तातें ब्रह्मसू कहिये है इत्यादि अनेक दोषोंके नाम ही कहे हैं यह जान मन वचन कायसे अनुराग करि ब्रह्मचर्य व्रत पालन करो। ब्रह्मचर्य सहित ही संसार के पार जावोगे। ब्रह्मचर्य विना समस्त व्रत तप असार है ब्रह्मचर्य विना समस्त काय क्लेश निष्फल हैं बाह्य जो स्पर्शन इन्द्रियका सुखसे विरक्त होय अभ्यन्तर परमात्म स्वरूप आत्माताकी उज्जलता देखो। जिस तरह अपना आत्मा काम के राग करि मलीन नहीं होय उस तरह यत्न करो। ब्रह्मचर्य करही दोनो लोक भूपित होय हैं तथा जो शीलकी रक्षा चाहो हो उज्जल यश चाहो हो अर धर्म चाहो हो अर अपनी प्रतिष्ठा चाहो तो चितमें परमागम की शिक्षा इस प्रकार धारण करो स्त्रीयों की कथा मत श्रवण करो मत कहो स्त्रीयों का राग रंग कौतूहल चेष्टा मत देखो

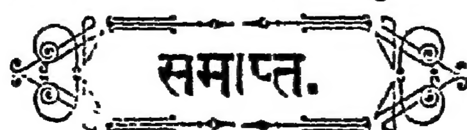
ये मेला देखना परिणाम विगाडे हैं। व्यभिचारी पुरुषोंकी संगति करना भांगजर्दा मादकवस्तु भक्षण करना ताम्बूल तथा पुष्प माला अतर फुलेलादि शीलभंग व्रत भंगके कारण दूर ही से टालो गीतनृत्यादि कामो दीपन के कारणों का त्याग करो रात्रि भक्षण टालो विकार करने का कारण लोक विरुद्ध वस्त्र आभरण मत पहरो एकान्त में किसी भी स्त्री मात्र का संसर्ग मतकरो रसना इन्द्रियकी लम्पटता छोडो जिव्हा की लम्पटता के साथ हजारों दोष उत्पन्न होते हैं इस कारण समस्त ऊंचा पणो यश धर्म नष्ट होजाय है जिव्हा इन्द्रियका लम्पटीके सन्तोष नष्ट होजाय समभावको स्वप्नमें भी नहीं जाने लोक व्यवहार नष्ट होजाय ब्रह्मचर्य भंग होजाय। इस कारण आत्माके हितके इच्छुक पुरुष एक ब्रह्मचर्यकी रक्षा करो इस प्रकार धर्मके दश लक्षण सर्वज्ञ भगवान कहे हैं। जिन पुरुषके यह दश चिन्ह प्रगट होय वहही धर्मात्मा है उत्तम क्षमादिकोंके घातक धर्मके वैरी क्रोध आदि हैं तिनतें अनेक दोष उपजे है तिनकी भावना करो अर क्षमादिकोंमें अनेक गुण हैं तिनकी भावना वारम्वार भावो। जो क्षमा है सो अपने प्राणों की रक्षा है धनकी रक्षा है यशकी रक्षा है धर्मको रक्षा है व्रतशील संयमसत्यकी रक्षा एक क्षमा ही से है कलहके घोर दुखों से अपनी रक्षा एक क्षमा ही करे है समस्त उपद्रव तथा वैरतें क्षमा ही रक्षा करे है। बहुरि क्रोध है सोधर्म अर्थ काम मोक्षका मूलतें नाश करे है अपने प्राणोंका नाश करे है। क्रोधसे प्रचंड रौद्र ध्यान प्रगट होय है क्रोधी एक क्षणमात्र में आपमारि जाय है कूवा, बावडा, नदी, तालाब, समुद्रमें डूब मरे है शस्त्र घात विष भक्षण झंपापात आदि अनेक कुकर्म करि आत्मघात करे हैं। अन्यके मारनेकी क्रोधीके दया नहीं होय है क्रोधी होय सो अपने पिताकों पुत्रको भ्राताकों मित्रको स्वामीकों सेवक कों गुरुकों एक क्षण मात्रमें मारे है क्रोधी घोर नर्कोंका पात्र है क्रोधी महाभयं कर है समस्त धर्मका नाश करने वाला है। क्रोधीके सत्य वचन नहीं होय है। आपकों अर धर्मकों सम-भावकों दग्ध करनेवाला कुवचन रूप अग्निको उगले है क्रोधी होयसो धर्मात्मा संयमी शीलवान मुनि अर श्रावकों को चोरी अन्याई झूठे दोष

कलंक लगाया दूषित करे है क्रोधके प्रभावतें ज्ञान कुज्ञान होय है आचरण विपरीत होजाय है श्रद्धान भ्रष्ट होजाय है अन्यायमें प्रवृत्त होजाय है नीतिका नाश होय है अति हठी होय विपरीत मार्गका प्रवर्त्तक होय है धर्म अधर्म उपकार अपकारका विचार रहित कृतघ्नी होय है इस कारण वीतराग धर्म के अर्थी होतो क्रोध भावको कदाचित मति प्राप्त होओ। तथा मार्दव जो कठोरता रहित कोमल परिणामी जीवमें गुरुओं का बड़ा अनुराग प्रवर्ते है मार्दव परिणामीको साधु पुरुष भी साधु मानें है इस कारण कठोरता रहित पुरुष ही ज्ञानका पात्र होय है मान रहित कोमल परिणामीकों जैसा गुण ग्रहण कराया चाहै तथा जैसी कला सिखाया चाहै तैसी कला गुण प्राप्त हो जाय है समस्त धर्मका मूल समस्त विद्याका मूल विनय है वियवान समस्त जीवोंकों प्रिय होता है अन्य गुण जिसमें नहीं होंय सो पुरुष भी विनयते मान्य होय है विनय परम आभूण है कोमल परिणामी में ही दया वसे है मार्दवतें स्वर्ग लोक की अभ्युदय सम्पदा निर्वाणकी अविनाशी सम्पदा प्राप्त होय है अर कठोर परिणामी कों शिक्षा नहीं लगे है साधु पुरुष हैं तिनका परिणाम भी अविनयी कठोर परिणामीकों दूरहीतें त्यागा चाहै है जैसे पाषाणमें जल प्रवेश नहीं करै तैसे सद्गुरुओंका उपदेश कठोर पुरुषका हृदयमें प्रवेश नहीं करै है जातें जो पाषाण काष्ठादिक भी नरमाई लिये होय ताका जो वालवाल मात्रभी जहां घड्याचा है छीलया चाहै तहां वाल मात्र ही उत्तर आवे तव जैसी मूरत वनाया चाहै तैसे ही वनै है अर कोमलता रहित में जहां टांची लगावे तहां चिड़क उतर दरपडै शिल्पीका अभिप्राय माफक घड़ाईमें नहीं आवे तैसे कठोर परिणामी को यथावत् शिक्षा नहीं लागे। अभिमानी किसीको भी प्रिय नहीं लागे अभिमानी का समस्त लोक विनाकारण वैरी होजाय है अर परलोकमें अतिनीच मनुष्य तिर्यञ्चोंमें असंख्यात काल नाना तिरस्कार का पात्र होय है इस कारण कठोरता त्यागि मार्दव भावना ही निरन्तर धारण करो। बहुरि कपट समस्त अनर्थों का मूल है प्रीति अर प्रतीत का नाश करनेवाला है कपटीमें असत्य छल निर्दयता विश्वास घातादि समस्त दोष वसे हैं कपटी

गुण नहीं समस्त दोष ही दोष वास करे है मायाचारी इस लोकमें महा अपयश कों पाय तिर्यंच्च नरकादि गतियोंमें असंख्यात काल भ्रमण करे है मायाचार रहित आर्जव धर्मका धारकमें समस्त गुण वसे हैं समस्त लोकों को प्रीति अर प्रतीतका कारण है परलोकमें देवों करि पूज्य इन्द्र प्रत्येन्द्रादि होय है इस कारण सरल परिणाम ही आत्माका हित है। अर सत्यवादीमें समस्त गुण तिष्टे हैं सदाकाल कपटादि दोष रहित जगतमें मान्यताको भी प्राप्त होय है अर परलोकमें अनेक देवमनुष्यादिक जिसकी आज्ञा मस्तक ऊपर धारण करे हैं अर असत्यवादी यहांही अपवाद निंदा करने योग्य होय है समस्तके अप्रतीतिका कारण है बांधव मित्रादिक भी अवज्ञा करि छोडे हैं राजाओंकर जिव्हा च्छेद सर्वस्व हरणादिक दंड पावे हैं अर परलोकमें तिर्यंच्चगति में वचन रहित एकेन्द्रिय विकल त्रयादि संख्यात पर्य्याय धारण करे हैं इस कारण सत्य धर्मका धारण करना ही श्रेष्ट है। बहुरि जिसका शुचि आचरण होय सोही जगतमें पूज्य है शुचि नाम पवित्रता उज्वलता का है जिसका आहार विहारादिक समस्त प्रवृति हिंसादिक रहित हिंसाका भयतें यत्नाचार सहित होय अर अन्यके धनमें अन्यकी स्त्रीमें कदाचित स्वप्नमें भी वांछा न ही होय वह ही उज्वल आचरणका धारक है तिसही को जगत पूज्य माने है जिसों भी का समस्त लोक विश्वास करे हैं वह ही लोकमें उत्तम है ऊर्द्ध लोकका पात्र है लोभ रहितका बड़ा उज्वल यश प्रगटे है लोभी महामलीन समस्त दोषों का पात्र है निन्द्य कर्ममें लोभी की प्रीति होय है लोभीके ग्राह्य अग्राह्य खाद्य अखाद्यकृत्य अकृत्यका विचार ही नहीं होय हैं इहां भी लोकमें निंदा धर्म तें पराङ्मुखता निर्दयता प्रगट देखिये है लोभी धर्म अर्थ काम को नष्ट करि कुमरण करि दुर्गति जाय है लोभीका हृदयमें गुण अवकाश नहीं पावे है इस लोक परलोकमें लोभीकों अचिन्त्य क्लेश दुःख प्राप्त होय है इस कारण शौच धर्म धारण करना ही श्रेष्ट है। बहुरि संयमही आत्माकाहित है इस लोकमें संयमका धारक समस्त लोकनिके वंदने योग्य होय समस्त पापों करि नहीं लिपे है इसका इस लोक तथा परलोकमें अचिन्त्य महिमा है अर असंयमी है सो प्राण निकाघात

अर विषयोंमें अनुराग करि अशुभ कर्मका बंध करै है इस कारण संयम धर्म ही जीवका हित है। बहुरि तप है सो कर्मके संवर निर्जरा करनेका प्रधान कारण है तपही आत्माकों कर्म मल रहित करै तपके प्रभावतें यहांही अनेक रिद्धी प्रगट होय है तपका अचिन्त्य प्रभाव है तप विना काम निद्राकों कोन मारे तपविना वांछा कों कौन मारे इन्द्रियनके विषय नका मारनेमें तपही समर्थ है आशा रुप पिशाचणी तपही से मारी जाय है काम का विजय तपही से होय है तपका साधन करनेवाला परीषह उपसर्ग आवतें भी रत्न त्रय धर्मतें नहीं छूटे है इस कारण तप धर्म धारण करनाही परम कल्याण है तपविना संसारतें छूटना नहीं है जातें चक्रीपना का राज्य छांडि तप धारै सो त्रैलोक्यमें वंदन योग्य पूज्य होय है अर तपको छोडि राज्यग्रहण करै सो अतिनिंद्य थुथुकार करने योग्य होय है तृणतें भी लघु होय इस कारण त्रैलोक्यमें तप समान महान अन्य नहीं। बहुरि परिग्रह समान भार नहीं जितने दुःख दुर्ध्यान क्लेश वैर वियोग शोक भय अपमान हैं ते समस्त परिग्रहके इच्छुकके हैं जैसे जैसे परिग्रह तें परिणाम निराला होय तैसे तैसे खेद रहित होय हैं जैसे बड़े भारकरि दुःखित पुरुष भार रहित होय तब सुखित होय तैसे परिग्रहकी वासना मिटे सुखित होय है समस्त दुःख अर समस्त पापोंके उपजावनेवाला यह परिग्रहही है जैसे नदियों करि समुद्र तृप्त नहीं होय और ईंधन करि अग्नितृप्त नहीं होय है आशारूपी खाडानिधिनतें नहीं भरै तो अन्य सम्पदातें कैसे भरै अर ज्यों ज्यों परिग्रहकी आशाका त्याग करो त्योंत्यों भरता चला जाय इस कारण समस्त दुःख दूर करने को त्यागही समर्थ हैत्यागहीसे अन्तरङ्ग वहिरङ्ग बन्धनतें रहित होय अनंत सुखके धारक हो ओगे परिग्रहके बंधनमें बंधे जीव परिग्रह त्यागते ही छूटि मुक्ति होय इस कारण त्याग धर्म धारण करना ही श्रेष्ठ है। बहुरि हे आत्मन् यह स्त्री पुत्र धन धान्य देह राज्य ऐश्वर्यादिकनमें एक परमाणु मात्रभी तुह्मारा नहीं है ये पुग्दल द्रव्य हैं जड़ हैं विनाशीक हैं अचेतन हैं इनपर द्रव्यनमें " अहं " ऐसा संकल्प तीव्र दर्शन मोहका उदयविना कौन करावे इसपर द्रव्यमें आत्म संकल्प मेरे कदाचित मत

होउ मैं अकिंचन्य हूं । या आकिंचन्य भावनाके प्रभावतें कर्म कालेप रहित यहांही समस्त बंध रहित हुआ तिष्टै है साक्षात् निर्वाणका कारण आकिंचन्य धर्मही धारण करो । बहुरि कुशील महा पाप है संसार परिभ्रमणका बीज है ब्रह्मचर्यके पालनेवाले से हिंसादिक पापोंका प्रचार दूर भागे है समस्त गुणोंकी सम्पदा इसमें वसे है जितेंद्रियता प्रगट होय है ब्रह्मचर्यसे कुल जात्यादिक विभूसित होय है परलोक में अनेक रिद्धी के धारक महर्द्धिक देव होय है । इस प्रकार भगवान अर्हन्त देवके मुखारविन्दतें प्रगट हूआ दशलक्षण धर्म आत्माका स्वभाव है परवस्तु नहीं है क्रोधादिक कर्मजनित उपाधित दूर होतें स्वयमेव आत्माका स्वभाव प्रगट होय है क्रोधके अभावतें क्षमा मानके अभावतें मार्दव मायाके आभावतें आर्जव लोभके अभाव तें शौच असत्यके अभावतें सत्य धर्म कषायों के अभावतें संयमगुण इच्छाके अभावतें तप गुण प्रगट होय है परमेंममता अभावतें त्याग धर्म होय है परद्रव्यों से भिन्न अपने आत्माका अनुभव आकिंचन्य धर्म प्रगट होय है । वेदनिके अभावतें आत्मस्वरुपमें प्रवर्तितें ब्रह्मचर्य धर्म प्रगट होय है यह दश प्रकारधर्म आत्माका स्वभाव है धन करि मोल आवे नहीं आकाशमें पातालमें दिशामें विदिशामें पहाडमें जलमें तीर्थमें मंदिरमें कहीं धऱ्या नहीं आत्माका निज स्वभाव है या कालाभ सम्यग्ज्ञान श्रद्धानसे होय है अर ऐसा सुगम है जो बालक वृद्ध युवा धनवान निर्धन वलवान निर्बल सहाय सहित असहाय रोगी निरोगी समस्त के धारण करने में आवने योग्य स्वाधीन है धर्मके धारनेमें कुछ खेद क्लेश कदाचित है नहीं दुर्लभ है नहीं कुछ बोझ उठाना है नहीं दूर देश जाना नहीं क्षुधा तृषा शीत उष्ण वेदनाका आवना नहीं किसीका विसम्वाद झगडा है नहीं अत्यन्त सुगम समस्त क्लेश दुःख रहित स्वाधीन आत्माका ही सत्य परिणमन है । इस कारण समस्त संसार परिभ्रमणतें छुटि अनन्त ज्ञान सुख वीर्य का धारक सिद्ध अवस्था याका फल है इस प्रकार दश लक्षण धर्मका सक्षेप वर्णन समाप्त हुआ ।



वैश्योंकी हालतका फोट्ट ।



जैन जातिके सुप्रसीद्ध कवि वा ज्योती प्रशादजी कृत यह प्रथम उरदूमें छपाथा अब हिंदीमें प्रकाशित कराया है वर्तमानमें जैन जाति व जैन धर्मकी अवनति दशाका फोट्ट अति उत्तमताके साथ दर्शाया है मूल्य एक आना ।

नोटः—एक साथ श्रीजिनेन्द्र दर्शन पाठ. समवशरण दर्पण. वैश्य कौमकी हालतका फोट्ट. दशलक्षण धर्म संग्रह. चारों पुस्तकें लेनेसे । डाक महसूल माफ तथा एक प्रकारकी ५ पुस्तकें लेनेसे ६ पुस्तकें भेज दी जावेगी ।

नोटः—हमारे पुस्तकालयसे ग्रंथ मंगाने वालोको एक रुपियासे चार रुपिया तक दो आना फी रुपिया पांच रुपैसे दश रुपै तक तीन आना रुपिया कमीशन दिया जाता है ज्यादाके लिये पत्र व्यवहार करना चाहिये ।

पद्मपुराणजी वचनिका महान ग्रंथ ६) हरिवंश पुराणजी व चनिका महान ग्रंथ ५) पार्श्वपुराण मुम्बईका छपा १।) पांडव पुराण २॥।) यशोधर चरित्र २] जिनदत्त चरित्र १] प्रद्युम्न चरित्र २॥।] पुण्याश्रव कथा कोश महान ग्रंथ ३] आराधना सार कथा कोष ३॥) सुकमाल चरित्र १] जैन कथा संग्रह १] चारदान कथावाडी ।) शील कथाभाष छंद वंद्य ।-] दोनिशिभोजन कथा वडी व छोटी ≈॥] दर्शनकथा ।-] खट पाहुड १। रत्नकरंड श्रावका चार सदा सुखजी कृत ४] धर्म संग्रह श्रावकाचार २] वसुनंदी श्रावका चार ॥] रत्नकरंड श्रा. सान्वयार्थ ।] परमात्मा प्रकाश ।≈) ।

गानेकी पुस्तकें—जैनपद संग्रह दौलतराम कृत ।≈] जैन पद संग्रह भूधरदास कृत ।-] मंगतराय भजन माला -॥] जोती प्र.ाद भजन -] न्यामत भजनमाला -] बालक भजन -] जिनेन्द्र गुणायन ≈] कुंजविलास -) कजरीसग्रह ≈॥] प्रभुविलास ≈] जं। उपदेशी गायन =॥] कमल श्री, (निशिभोजन निषेध नाटक] ≈] मनोवती [दर्शन कथा नाटक] ≈] करुण चरित्र नाटक =] इन तीनो नाटकों में बहोत बढिया २ गाने हैं जैन नाटक मंडलिया प्रायः इन्ही नाटकोंको खेला करती हैं ।

अन्य पुस्तकें—छः ढाला संग्रह द्यानत, बुधजन, दौलत, तीनों पाठोंकी इकठी एक पुस्तक ≈] बार हभावनासंग्रह]॥ श्रीनेमिनाथका ब्याहला, पश्नोतर, वारेमासादि राजुलनेपाठ ।-] तत्वार्थ सूत्रमूल सम्पूर्ण -) भूदरजैनशतकअर्थसहित ;] भक्ताभरभाषा कठिन शब्दोंके अर्थ सहित -] सातावारेमासा संग्रह -) प्रतिमाचालीसी)॥ जैन १६ आरती संग्रह ∂॥. भाषासूक्तिमुक्तावली ।।) द्रव्य संग्रह बडी टीका ॥) शेठ सुदर्शन कथा ∂॥।) देवपूजा अर्थ सहित ≈] निर्त्यनियमपूजा देवशास्त्रगुरु शुद्ध संस्कृत पूजातथा भाषापूजा ≈॥) चारचौबीसी पाट ४] तरहदीप पूजा विधान २।' भाषापूजा संग्रह ॥) चौबीस महाराजका पाठ

वृन्दावनजी कृत ।।।) अकलंकस्तोत्र ≈) चतुर्विंशतिजिनस्तुति -।) [illegible] ≈) मृत्युमहो-
त्सव -॥) संसारपच्चीसी ।-) रत्नत्रयचौबीसी ८॥ दर्शनपच्चीसी ≈) [illegible] -॥) पुरुषार्थ-
[illegible] अर्थसहित ।) विषापहार)। पंचमंगल)॥ आलोचनापाठ ८॥ निर्वाणकांड ८। भक्तामर-
स्तोत्र अर्थसहित ≈) णमोकारमंत्र अर्थ ८० पृष्ठ ≈) फोटू [illegible] दि-
गंबर जैनमुनि -) फोटू ऐलक पन्नालालजी महाराज -) [illegible]
[illegible] ।) [illegible] चालीसी ८॥ [illegible] ८।) कल्याणमंदिर [illegible])। संक-
टहरण विनती ॥) [illegible])। बाईसपरीषह)॥ [illegible] -।) [illegible] -)
[illegible] रत्नमाला ।।।) शिक्षावली ८॥ [illegible] ८॥ [illegible] -)
चौबीसी [illegible] -॥) [illegible] बा. देवेन्द्रप्रसादजी आरानिवासी कृत आठ [illegible]-
[illegible] चरित्र ॥≈) [illegible] ।) [illegible]
भाग नया नया छापा जिसमें ४६ [illegible] और ८० [illegible] लिखित
हैं ॥। १) [illegible] यात्रा १) [illegible] मिलनेका पता—

पी. एम. एल. जैन मैनेजर [illegible]

पुस्तकालय [illegible]

[illegible]

